स्वस्थ व सफल
जीवन यात्रा के
स्वर्णिम सोपान
आ घर
लौट चलें
-आचार्य शिव मुनि

शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति

आदीश्वर धाम, कुप्पकलां, जिला-संगरूर (पंजाब)

के तत्वावधान में प्रकाशित समस्त

आत्म-शिव साहित्य

एवं समस्त सी.डी., वी.सी.डी., डी.वी.डी. एवं कैसेट्स

सहयोग राशि

सम्पूर्ण आगम एवं शिव साहित्य : 5100/-

आगम साहित्य : 4100/-

ध्यान साहित्य एवं ध्यान से ज्ञान,

वीतराग विज्ञान भाग-1 व भाग-2,

सोऽहं सी.डी. : वीतराग साधिका निशा जैन

ध्यान से ज्ञान (आत्म-ध्यान बेसिक प्रवचन) श्रमण संघीय मंत्री श्री शिरीष मुनि जी म.

शिवाचार्य जीवन दर्शन, जन्मोत्सव कार्यक्रम, जैन एकता प्रवचन, बड़ी मांगलिक

समाधि तंत्र प्रवचन : श्री शिरीष मुनि जी म. सा. (छः डी.वी.डी. का सेट)

उत्तराध्ययन मूल एवं प्रवचन : युवा मनीषी श्री शुभम् मुनि जी म.सा.

गंभीर शिविर प्रवचन : डी.वी.डी. - शिवाचार्य श्री जी

बेसिक, गंभीर एवं सप्त दिवसीय गंभीर शिविर

चातुर्मासिक प्रवचन जम्मू से प्रशांत विहार (दिल्ली) तक के 2006 से 2014 तक

प्राप्ति हेतु निम्न पते पर संपर्क करें:

शिवाचार्य समवसरण

एफ-3/20, ओंकार धाम रोड, रामा विहार,
नजदीक रोहिणी सेक्टर-22, दिल्ली-110081
मोबाइल नं. 09350111542

शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति

आदीश्वर धाम, कुप्पकलां,
जिला-संगरूर (पंजाब)-148019
श्री सुशील जैन 09416034463

Website : www.jainacharya.org; www.shivacharyaji.org
E-mail : shivacharyaji@jainacharya.com, shivacharyaji@yahoo.com

श्रद्धेय शिवाचार्य श्री के 29वें वर्षीतप पारणोत्सव
(21 अप्रैल 2015 अक्षय तृतीया) के अवसर पर प्रकाशित

आ घर लौट चलें

प्रवक्ताः
आत्मज्ञानी सद्गुरूदेव आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी महाराज

आ घर लौट चलें

प्रवक्ता	:	आत्मज्ञानी सदगुरूदेव आचार्य सम्राट श्री शिव मुनि जी महाराज
सहयोग	:	आत्म योगी श्रमण संघीय मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज
	:	साधक श्री शैलेश जी
प्रथम संस्करण	:	दिसंबर 2001 (प्रतियां 2000)
द्वितीय संस्करण	:	जनवरी 2006 (प्रतियां 2000)
तृतीय संस्करण	:	फरवरी 2011 (प्रतियां 2000)
चतुर्थ संस्करण	:	अप्रैल 2015 (प्रतियां 5000)
प्रकाशक	:	शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति श्री आदीश्वर धाम, मु.पो. कुप्पकलां-148019 जिला संगरूर (पंजाब) फोन न. 01675-273981 मो. 09416 034 463
मूल्य	:	100 रुपये मात्र
मुद्रण प्रबंधन	:	इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, करनाल दूरभाष : 09354101541
प्राप्तिस्थान	:	शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति एफ-3/20, ओंकार धाम रोड, रामा विहार, नजदीक रोहिणी सैक्टर-22, दिल्ली-110081 मो. 09350 111 542

अर्पण

जिनके प्रकाश-पुंज पाद
जन-जन के लिए
आत्म-प्रासाद
में लौटने के लिए
प्रेरणा-प्रदीप बने
उन श्रमणसंघ के
आद्य अनुशास्ता
आचार्य सम्राट् पूज्य
श्री आत्माराम जी म.सा.
के अदृष्ट
पाणि-पल्लवों में
अनन्त आस्थाओं
के साथ
अर्पित-समर्पित

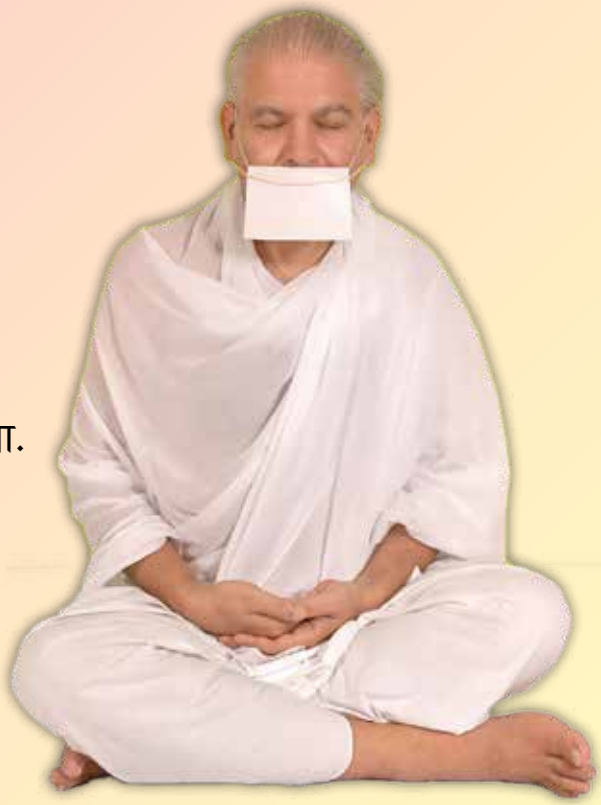

-आचार्य शिव मुनि

परमात्म-मय होने का आध्यात्मिक विज्ञान

आत्म-ध्यान

आनंद, शांति, सुख, समृद्धि और समाधान प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक अपेक्षाएं हैं। इन्हीं अपेक्षाओं की पूर्ति के लिये प्रत्येक मानव दिन-रात श्रम करता है, भाग-दौड़ करता है, विविध साधनों-संसाधनों का संग्रह करता है। परन्तु उसकी अपेक्षाएं पूरी नहीं हो पाती। सुख के साधनों के अंबार लगाकर भी उसे सुख प्राप्त नहीं हो पाता।

आत्मज्ञानी श्रद्धेय शिवाचार्य श्री फरमाते हैं-

सुख, साधनों में नहीं है। सुख, साधना में है।
आनंद, पदार्थ में नहीं है। आनंद, स्वात्मा में है।
शांति, बाह्य-भ्रमण में नहीं है। शांति, आत्म-रमण में है।

समृद्धि, संचय में नहीं है। समृद्धि, सामायिक और "मैं आत्मा" में है।
समाधान, पर-ध्यान में नहीं है। समाधान, आत्म-ध्यान में है।

"आत्म-ध्यान" एक आध्यात्मिक उत्क्रांति है। जिह्वा पर रखा गया मधु-बिन्दु जैसे तत्क्षण मुख में माधुर्य उत्पन्न कर देता है, वैसे ही "आत्म-ध्यान" का प्रथम क्षण ही साधक के मानस को आत्म-मधु-माधुर्य से भर देता है। स्वर्ग, जन्नत या हैवन (Heaven) मृत्यु के बाद का सच हो सकता है, पर आत्म-ध्यान से टूटती कर्म-शृंखलायें और आत्मानंद का बहता प्रवाह इसी क्षण का सच हैं। प्रतिदिन प्रवचन के पश्चिम-पलों में श्रद्धेय शिवाचार्य श्री मात्र पांच मिनट के लिए "आत्म-ध्यान" का एक छोटा-सा प्रयोग करते हैं। वह छोटी सी समाधि-बेला ही सहस्रों मुमुक्षुओं के लिये "आत्म-ध्यान" के चार और सप्त दिवसीय शिविरों के लिए प्रवेश-द्वार बन चुकी है।

दुर्लभातिदुर्लभ संयोग आज सर्व सुलभ है। जिन नहीं, पर जिनकल्प श्रद्धेय शिवाचार्य श्री आज सदेह इस भूतल पर विहरमान हैं। यह इस भूतल का सौभाग्य है। इस सौभाग्य में सहभागी होने के लिये प्रत्येक मुमुक्षु आमंत्रित है।

आइये, "आत्म-ध्यान" में डुबकी लगाइये और उस अमृत को प्राप्त कर लीजिये जो कभी आप से दूर था ही नहीं।

.... उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्यवरन्निबोधत।

-शिरीष मुनि

प्रकाशकीय

'आ घर लौट चलें' आत्मज्ञानी सदगुरूदेव आचार्य सम्राट् डॉ. श्री शिवमुनि जी महाराज के कालजयी प्रवचनों का संकलन है। सात प्रवचनों की प्रस्तुत प्रवचनशृंखला में पूज्य आचार्य श्री जी ने वर्तमान मानव के समक्ष चिन्तन के कई आयाम प्रस्तुत किए हैं। यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सातों ही प्रवचनों के विषय मानव जीवन के विकास से जुड़े हुए हैं। मानव मन के पारखी आचार्य श्री जी मानव मन के गहरे में उतरकर मानव के मन का न केवल सूक्ष्म विवेचन करते हैं, बल्कि व्यथित, तनाव-ग्रस्त और असमाधित मानव-मन की चिकित्सा भी करते हैं। मनुष्य कैसे अपना सम्यक् विकास कर सकता है, पथ-बाधाओं को कैसे निरस्त करता हुआ निरंतर आगे और आगे अपनी यात्रा को बढ़ा सकता है यह सब प्रस्तुत पुस्तक में सीधे-सरल शब्दों में समझाया गया है।

पूज्य प्रवर आचार्य श्री जी के सुशिष्य श्रमण संघीय मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज की प्रेरणा व श्रम से प्रस्तुत प्रवचनों को श्रव्य से पाठेय रूप प्रदान किया गया है। इतना ही नहीं, शीघ्र ही पुस्तकाकार रूप में संयोजित कराके मुमुक्षु पाठकों पर महान उपकार भी किया है। प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन-पर्व पर हम हार्दिक आनंद का अनुभव कर रहे हैं। किसी पुस्तक का चतुर्थ संस्करण स्वयं ही उसकी लोकप्रियता का प्रमाण होता है। पूज्य श्री का कृपा-प्रसाद हमें यथारूप प्राप्त होता रहे इसी मंगल मनीषा के साथ ...

- प्रकाशक

आ घर लौट चलें

आज मनुष्य घोर अशांति में जी रहा है। अतीत में भी मनुष्य अशांत था, पर वर्तमान के मनुष्य की तुलना में अतीत का मनुष्य कम अशांत था। अतीत में मनुष्य के पास भौतिक साधन अत्यल्प थे। उसका अधिकांश जीवन प्रकृति पर आश्रित था। क्योंकि उस समय मनुष्य प्रकृति पर आश्रित था। क्योंकि उस समय मनुष्य प्रकृति से जुड़कर जी रहा था इसलिए वह कम अशांत था। प्रकृति से उसे जो भी मिलता था, अच्छा या बुरा, उसे ही वह उसके वरदान और अभिशाप के रूप में ग्रहण कर लेता था।

विगत कुछेक वर्षों से मनुष्य ने प्रकृति के एकछत्र साम्राज्य को चुनौतियां देनी प्रारंभ की। विज्ञान का विकास उसी का परिणाम है। विज्ञान के बल पर मनुष्य ने अथाह धन उगाया, असीमित सुविधाएं सृजित कर लीं, स्वप्न प्रतीत होने वाली बातों को यथार्थ में बदल दिया, सब किया, पर सब करके भी उसे वह न मिला जिसके लिए उसने यह सब किया, वह आज भी उसके लिए सुखद-स्वप्न का विषय बना हुआ है।

क्या है वह जो मानव का लक्ष्य है? वह है-शांति, वह है आनन्द, वह आत्मतुष्टि। आकाश में उड़कर भी मानव असन्तुष्ट है, पुष्प से भी सुकोमल गद्दों पर लेटकर भी वह अशांत है। स्पष्ट है कि सुकोमल शय्याओं में सुख नहीं है, अनन्त आकाश की उड़ानों में सन्तुष्टि नहीं है। फिर शांति और सन्तुष्टि कहां पर है? भौतिक जगत में इस प्रश्न के एक हजार उत्तर हो सकते हैं। परन्तु अध्यात्म के जगत में इस प्रश्न का एक ही समाधान है और वह समाधान है, शांति और सन्तुष्टि मनुष्य के भीतर ही छिपी है। बाहर के जगत में वह ऊंचे से ऊंचे

प्रासाद बना ले, उन प्रासादों में भी वह असुरक्षित और असंतुष्ट ही रहेगा। आत्मप्रासाद में प्रवेश ही उसे सुरक्षा और सन्तुष्टि दे सकता है।

मनुष्य को सुख-शांति और अखण्ड आनंद चाहिए तो आवश्यक है कि बाह्य-भ्रमणों के भ्रम से मुक्त होकर अपने भीतर लौटे, आत्म प्रासाद में लौटे, आत्मरमण करे, आत्मोद्यान का विहारी बने। यात्रा के प्रथम पांव पर ही उसे शांति-शैतिल्य की छाया मिलेगी, समाधान का स्वाद उपलब्ध होगा।

'आ घर लौट चलें' पुस्तक में अपने भीतर लौटने के सूत्र-द्वारों पर ही वार्ताएं हुई हैं। मैंने जो अनुभव किया है, उस अनुभव को ही शब्दों में कहने का उपक्रम किया है। प्रस्तुत पुस्तक आपके अन्तस् में आपके अपने घर लौटने की प्यास जगा पाएगी तो पुस्तक का अवतरण सफलता पा लेगा। ऐसा मैं मानता हूं।

मेरे कहे को मेरे अन्तेवासी मुनिरत्न श्री शिरीष मुनि जी एवं साधक शैलेश जी ने संपादित और संयोजित कर प्रस्तुत किया है। इनकी प्रस्तुति सदैव सुरुचिपूर्ण रही है। ये अपने लक्ष्य-पथ पर अविश्रान्त गतिमान रहें एतदर्थ मेरे आशीष इनके साथ हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में व्यक्त-अव्यक्त रूप से सहयोग देने वाले सभी महानुभावों को मैं साधुवाद देता हूं और आशा करता हूं कि प्रस्तुत पुस्तिका आपको अपने वास्तविक घर का बोध देगी। इसी में प्रस्तुत पुस्तक की संयोजना की सफलता भी होगी।

-आचार्य शिव मुनि

चतुर्थ संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक में श्रद्धेय शिवाचार्य श्री द्वारा उपदिष्ट सात प्रवचनों का संकलन किया गया है। इन प्रवचनों में श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने बालक, युवा एवं वृद्ध इन तीनों आयु-वर्ग के लोगों से सम्पर्क स्थापित कर अपनी बात कही है। आचार्य श्री कहते हैं - स्वास्थ्य और शांति व्यक्ति की सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं। इन सम्पत्तियों का स्वामी ही वस्तुतः समृद्ध है। सोने-चांदी और अन्यान्य संचयों से समृद्धि का सम्बन्ध नहीं है।

स्वास्थ्य और शांति को कहीं बाहर से नहीं खोजना है। अपनी जीवन शैली में संशोधन कर व्यक्ति स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। शांति व्यक्ति का आत्म-गुण है। आकांक्षा, वासना, धारणा आदि की परतों के तले व्यक्ति की शांति कहीं दब गई है। निंदामि, गर्हामि और व्युत्सर्ग द्वारा अनावश्यक का विसर्जन कर शांति के अक्षय स्रोत को उद्घाटित किया जा सकता है। ऐसे उपायों और सूत्रों पर श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने प्रभूत प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत पुस्तक का यह चतुर्थ संस्करण है। जैन-जैनेतर पाठकों में इस सृजन ने पर्याप्त सुयश अर्जित किया है। पूर्वापेक्षया सुन्दर संस्करण और रुचिकर चित्रादि से सज्जित यह पुस्तक पाठकों का मार्ग-दर्शन करेगी, ऐसा विश्वास है।

-शिरीष मुनि

अनुक्रमणिका

बाल-संस्कार के सूत्र 1-28

सरल बचपन 3, शिक्षा की आयु 4, एक तपश्चर्या : है मां बनना 4, मां और जननी 5, शिक्षण की प्रथम पात्रता 6, प्रामाणिक बनें माता-पिता 9, गर्भ संस्कार 11, सगर्भा माता का आचार-विचार-आहार 13, कैसे दें हंसते हुए बालक को जन्म 17, चश्मा क्यों? 19, ओंकार संस्कार 20, कैसे हों खिलौने 21, मिट्टी है सर्वोत्तम खिलौना 23, वैज्ञानिक शिक्षा विधि 24, सम्मानपूर्ण व्यवहार रखें बच्चों के साथ 26

सम्यक्-शिक्षा का प्रारंभ 29-60

कुशल/अकुशल खिलाड़ी 31, सम्यक् शिक्षा 33, शिक्षा : शिक्षा या सजा? 33, शिक्षा का लक्ष्य 34, परीक्षा का तनाव 36, सच्ची शिक्षा 38, शिक्षा : आनंदपूर्ण जीवन की विधि 41, रजिस्टेंस पावर 43, विश्वसनीय हो 'हां' और 'न' 44, ब्रह्म-उपदेशम् 47, ध्यान-समाधि-संतसान्निध्य 49, प्रेम की सुगंध 51, मोहनदास/महात्मा गांधी 52, Love is a state of mind 55, निःसीम प्रेम 56, महात्मा की प्रेम-शिक्षा 57, दो प्रकार का ज्ञान 59

स्वर्णिम वृद्धत्व के सोपान 61-86

बुढ़ापे के लक्षण : शरीर की अकड़न 64, मन की अकड़न 65, धारणाओं का फोटोफ्रेम 66, बालक : एक जीवंत जीवन 67, आग्रह नहीं अनुग्रह 68, नया सीखने की चाह 69, महानता का सूत्र 72, सृजनधर्मी बनें 72, बच्चों के साथ खेलें 73, स्पर्धा नहीं, सौजन्य 75, जटिलता नहीं, तरलता 76, दीर्घ श्वास का चमत्कार 77, आहार-संयम 79, ऊनोदरी 80, भोजन से उठने का सही समय 80, सजगता पूर्वक भोजन करें 81, कितनी बार भोजन करें? 82, अनासक्त चेतना का विकास 82, असुरक्षा भी जरूरी है 83, सद्गुरु की कसौटी : अनाग्रह 85

आ घर लौट चलें 87-114

जो चाहिए, वही हो जाओ 89, हिप्नोटाइज्ड व्यक्तित्व 91, क्या चाहिए? 92, मानव : सृष्टि की श्रेष्ठ रचना 93, आनंद-शांति-स्वतंत्रता 94, घर लौटने के सूत्र 94, ज्ञान, विज्ञान, मूल्यांकन और संस्कार 97, संस्कारों का प्रभाव 98, निंदामि यानि संस्कारों से मुक्ति 102, होश पूर्वक स्मरण 103, दुख-रेचन का उपाय : आँसू 104, निरपेक्ष आत्मदर्शन 108, द्वितीय सूत्र है गरिहामि/Confession 110, गरिहामि : हीनता-मुक्ति का उपाय 111, एक्सरे-आइज़ सद्गुरु 112

तनाव मुक्ति की साधना : कायोत्सर्ग 115-144

उर्वशी में छिपी उर्वशी 117, कायोत्सर्ग - आत्मदर्शन का सूत्र 122, कायोत्सर्ग : तनाव मुक्ति का उपाय 123, पकड़ से पनपता है तनाव 124, जवान बने रहने का जज्बा 127, निरंतर परिवर्तन : शरीर का गुणधर्म 128, यथार्थ को जानें! स्वीकारें! 129, पण्डित कौन? 131, कायोत्सर्ग का अंतःस्वरूप 133, पर-उपदेश कुशलता 134, ममत्व का निकटतम केन्द्र : शरीर 135, निरपेक्ष दर्शन : दर्द मुक्ति का उपाय 137, निषेध बनता है आमंत्रण 138, सम्यक् आलंबन 140, निष्काम कर्म पूजा है 142

समय का संतुलित संयोजन 145-170

जीवन : कितना छोटा, कितना लम्बा 147, धर्म-श्रद्धा/धन-श्रद्धा 150, अतृप्ति-असंतुष्टि 152, मूल की भूल 153, समय-संयोजन 155, आत्मविकास का उपाय : ध्यान 155, आवश्यकता/आकांक्षा 157, परिवार-समाज-देश 158, सुख : आत्मा का गुणधर्म 159, प्राकृति की चेतावनी को सुनें 161, जरूरी है एक समय-सारिणी 162, स्थिरता-अस्थिरता 163, अहोभाव-प्रेमभाव 165, प्रेम का चमत्कार 167

समाधान की शीतल छांव 171-192

वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में रात्रि भोजन-त्याग 173, रात्रि-विश्राम का संयोजन 176, शरीर का अन्तर्द्वन्द 177, कम समय : अधिक विश्राम 178, संबंधों का माधुर्य 180, गलती होना स्वाभाविक है 180, मेरा घर/दादाजी का घर 181, संयुक्त परिवार के आधार सूत्र 182, मिलकर बैठें 183, अभिवादन/वन्दन 184, नमस्कार से खिलता है हृदयचक्र 185, प्रणाम का परिणाम 186, समता : स्वभाव में स्थिरता 187, दुख के आंसू : आनंद के आंसू 189, यथार्थ दर्शन : सम्यग्दर्शन 190, आत्मान्वेषण का महापर्व : सम्वत्सरी 192

परिशिष्ट 193-210

जैन धर्म दिवाकर, आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज : शब्द-चित्र 193

जैनभूषण, पंजाब केसरी, बहुश्रुत, महाश्रमण,
गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द-चित्र 194

आत्मज्ञानी सद्गुरूदेव युग प्रधान,
आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज : शब्द-चित्र 195

श्रमणसंघीय मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज : शब्द-चित्र 196

आत्म-शिव साहित्य 198

कैसेट्स, सी.डी., वी.सी.डी. एवं डी.वी.डी. 208

बाल संस्कार के सूत्र

आप जो करेंगे वही सब कुछ आपका बच्चा सीखेगा। आपकी वाणी आपके बच्चे की वाणी बनेगी, आपका आचरण आपके बच्चे का आचरण बनेगा, आपका व्यवहार आपके बच्चे का व्यवहार बनेगा। आप जो हैं उसकी प्रतिध्वनि आपके बच्चे से उठेगी। इसीलिए तो उसे आपका अंगज कहा गया है। इसलिए बच्चों को कुछ भी सिखाने से पहले वह सब कुछ आपको भी सीखना चाहिए। यदि केवल शब्दों से ही आप सिखाते रहे तो बच्चे शब्द ही सीख पाएंगे। वह सीखा हुआ कदापि उनका आचरण नहीं बन पाएगा।

1

बाल-संस्कार के सूत्र

सरल बचपन

हमारा विषय है बाल-विकास के सूत्र। जरा कल्पना करें, एक छोटा-सा बालक, बहुत सुन्दर आंखें, निर्दोष और भोला चेहरा, हंसता हुआ उसका मुख, सरल मन, ऐसा कोई प्यारा-सा बच्चा आपके सामने बैठा हो, उसको आप क्या सिखाना चाहेंगे? आप जरा सोचें कि ऐसा कोई प्यारा-सा बच्चा, जिसकी आंखें निर्दोष हैं, दिल में प्यार और सरलता है, उसको आप क्या सिखाना चाहेंगे?

अगर देखा जाए तो उसको कुछ भी सिखाना जरूरी नहीं है। क्योंकि ऐसा ही तो हम सबको होना चाहिए। क्या आपको यह नहीं लगता है कि उसके पास जो चेहरा है वह हमारे पास नहीं है? उसके पास जो निर्दोषता है,

वह हमारे पास नहीं है? फिर इस बाल-विकास के सूत्र का क्या अर्थ होगा? हम कहें कि हमें बच्चों को संस्कारित करना चाहिए। उसका क्या मतलब होगा? उसका अर्थ इस बात में निहित है कि बच्चे के पास जो सरलता और निर्दोषता है वह कुदरती है, प्रकृति के कारण है। प्रत्येक व्यक्ति का जब जन्म होता है तो वह ऐसा ही होता है। लेकिन जब धीरे-धीरे उम्र बढ़ती है तो धीरे-धीरे वह भोलापन चला जाता है। उम्र के बढ़ने के साथ, बुद्धि के विकास के साथ मन की वह सरलता और निर्दोषता नहीं रहती है। यहीं पर माता, पिता, समाज, शिक्षक और गुरू का कर्त्तव्य, उसका रोल, उनके संस्कार काम आते हैं।

शिक्षा की आयु

एक महिला थी। वह किसी मनोवैज्ञानिक के पास गई। वह मनोवैज्ञानिक बहुत ही सुलझा हुआ व्यक्ति था। संत जैसा जीवन था उसका। उस महिला ने उससे पूछा, मैं चाहती हूं कि मैं अपने बच्चे को कुछ सिखाऊं, उसके भीतर एक महान इंसान के, सुंदर जीवन के बीज डालूं। इसके लिए मैं क्या करूं?

मनोवैज्ञानिक ने पूछा, बच्चे की उम्र क्या है? महिला ने कहा, पाँच साल। मनोवैज्ञानिक ने कहा, बहुत लेट हो गया। बहुत देरी हो गई। अब तक तो अस्सी प्रतिशत उसका जीवन बन चुका है। महिला ने पूछा, फिर मैं शुरुआत कहाँ से करुं?

एक तपश्चर्या : है मां बनना

यही आज हम समझेंगे कि शुरूआत कहाँ से करें। आपको पता है कि अब आप किसी डॉक्टर के पास दवाई लेने के लिए जाते हैं तो आप पहले यह सोचते हैं कि डॉक्टर ठीक है या नहीं। एम.बी.बी.एस. है, एम.डी. है, आप पहले देखते और परखते हैं, फिर दवाई लेते हैं। आप किसी आर्किटेक्ट को अपने मकान का नक्शा बनाने के लिए देते

हैं तो पहले देखते हैं कि आर्किटेक्ट क्वालिफाइड है कि नहीं। कितना अनुभव है उसका। आप किसी एडवोकेट को नियुक्त करते हैं तो पहले उसका अनुभव और काम देखते हैं। अब एक डॉक्टर बनने के लिए कितने वर्ष लगते हैं? अनेक वर्ष। एक आर्किटेक्ट बनने के लिए? खूब अध्ययन करना पड़ता है। लेकिन हमने कभी यह नहीं सोचा कि एक मां और पिता बनने के लिए भी किसी ट्रेनिंग की जरूरत है। न तो कोई पिता अपने बेटे को यह ट्रेनिंग देता है और न कोई मां अपनी बेटी को यह ट्रेनिंग देती है।

स्मरण रखें, एक मां बनना बहुत बड़ी बात है। मां बनना गुरू बनने से भी बड़ी बात है। भारतीय संस्कृति में सर्वप्रथम मां को प्रणाम किया जाता है। फिर पिता को। उसके बाद आते हैं गुरु। स्पष्ट है कि भारत के ऋषियों और मुनियों ने मां को सर्वोच्च स्थान दिया है। जब हम भगवान् महावीर का नाम लेते हैं तो कहते हैं त्रिशलानंदन अर्थात् त्रिशला के नंदन। त्रिशला का नाम पहले आता है।

मां और जननी

याद रखें, मां का मतलब केवल बच्चे को जन्म देना ही नहीं है। बच्चे को जन्म देने से कोई भी स्त्री मां नहीं बन जाती है। इसलिए भारतीय संस्कृति ने दो सुंदर शब्द दिए हैं। एक है जननी और दूसरा है मां। जननी का अर्थ है, जन्म देने वाली। मां का अर्थ है जीवन देने वाली। कृष्ण की जननी तो थी देवकी और मां थी यशोदा। मां बनना एक तपश्चर्या है। मां बनना एक साधना है। मां बनना एक विशेष प्रकार का अनुष्ठान है। मां अर्थात् वह जो धरती के समान महान है। मां का एक गरिमामयी व्यक्तित्व है, कि उसको देखकर आंखें झुक जाएं और प्रणाम हो जाए। लेकिन मां जा रही हो क्लब और होटल में तो उसे प्रणाम करने की एक बेटे की कैसे भावना होगी?

शिक्षण की प्रथम पात्रता

बाल संस्कार के संदर्भ में सर्वप्रथम यह बात जरूरी है कि एक मां सच में मां बने और एक पिता सच में पिता बने। फिर आप बच्चे को कुछ सिखा सकने के काबिल बनेंगे। क्योंकि आप वही सिखा सकते हैं जो आप स्वयं हैं। जो आप स्वयं नहीं हैं वह आप नहीं सिखा सकते हैं। मैं आपको ध्यान तभी सिखा सकता हूं जब मैं स्वयं ध्यान को जानता और जीता हूं। अन्यथा मैं आपको नहीं सिखा सकता हूं। अगर मैं सिखाऊंगा भी तो उसका कोई परिणाम नहीं आएगा।

मां का एक बहुत सुंदर व्यक्तित्व है, गरिमामयी व्यक्तित्व। मां बनने के लिए एक Training आवश्यक है? क्या Training आवश्यक है? क्या सीखना जरूरी है? क्या समझना जरूरी है?

माता और पिता ये दो भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। जहां से संस्कृति का जन्म हुआ है। क्योंकि समाज बनता है परिवारों से और परिवार का निर्माण होता है एक पिता और माता से। सच में देखा जाए तो पिता भी बाद में है। मां सर्वप्रथम है।

एक बार एक मां अपने पुत्र को लेकर हजरत मोहम्मद के पास गई। उसका पुत्र बीमार था और उसकी बीमारी का मुख्य कारण था अधिक मात्रा में गुड़ खाना। मां के बहुत समझाने पर भी जब पुत्र ने गुड़ खाना नहीं छोड़ा तो वह उसे लेकर हजरत मोहम्मद के पास गई। मां का विचार था कि हजरत मोहम्मद एक संत हैं और संत के आशीर्वाद से उसका पुत्र गुड़ खाना छोड़ देगा। उस मां ने हजरत मोहम्मद को अपनी परेशानी बताई।

हजरत मोहम्मद बोले, बहन! तुम पन्द्रह दिन के बाद अपने पुत्र को लेकर मेरे पास आना। मां लौट गई। पन्द्रह दिन बाद वह अपने पुत्र को लेकर हजरत मोहम्मद के पास आई। हजरत मोहम्मद ने उस बालक के सिर पर हाथ रखा और कहा, बच्चे! गुड़ नहीं खाना।

हजरत मोहम्मद की बात सुनकर बच्चे ने कहा, ठीक है, मैं गुड़ नहीं खाऊंगा।

इससे महिला ने कुछ सोचते हुए कहा, हजरत! आपको इतना की कहना था तो पन्द्रह दिन पहले भी कह सकते थे। फिर पन्द्रह दिन बाद ही ऐसा क्यों कहा?

हजरत मोहम्मद बोले, यही बात मैं पन्द्रह दिन पहले भी कह सकता था। पर उस समय मेरा कहा कुछ परिणाम न दे पाता। क्योंकि उस समय मैं स्वयं गुड़ खाने का शौकीन था। इन पन्द्रह दिनों में मैंने स्वयं गुड़ नहीं खाया है और मैं पूर्णतः विश्वस्त हूं कि गुड़ को छोड़ना एकदम से सहज है। अब मैंने जो बच्चे को कहा है वह कहा हुआ पूरा परिणाम लाएगा। तुम्हारा पुत्र अब गुड़ नहीं खाएगा।

और सच में ही बच्चे ने उस दिन से गुड़ खाना बन्द कर दिया।

इसी बात की आवश्यकता है एक मां के लिए और एक पिता के लिए। आप स्वयं अभ्यास नहीं करते हैं तो आप जो कहेंगे उसका सुपरिणाम आपको प्राप्त नहीं होगा।

आपका यह प्रतिदिन का अनुभव है कि आप प्रतिदिन अपने बच्चों को जिन कामों से रोकते हैं बच्चे वही काम प्रतिदिन करते हैं। क्यों? क्योंकि आप भी वही गलती करते हैं। आप Smoking करते हैं और चाहते हैं कि आपके बच्चे Smoking न करें, तो यह नहीं होगा। भले ही आप छिप कर करें पर उसकी सूचना आपके बच्चों तक पहुंच ही जाएगी। वे भी आपसे छिपाकर वही करेंगे जो छिपकर आप करते हैं। आप जो कर रहे हैं वह आपके जीवन में और आपके बच्चों के जीवन में Reflect होगा ही। यह अवश्यंभावी है। यह प्राकृतिक नियम है।

आप अपने बच्चों से झूठ बोलते हैं और उनसे अपेक्षा करते हैं कि वे सच बोलें। जब आप अपने पुत्र को झूठ बोलते हुए पाते हैं तो उसे चांटा लगाते हैं, उसे डराते और धमकाते हैं। परन्तु आपका वह नकारात्मक व्यवहार आपके बच्चों को बदल नहीं पाएगा। क्योंकि बच्चे सच को ग्रहण करते हैं। आप सच में जो हैं आपके उस रूप को उन्होंने ग्रहण किया है। आप झूठ बोलते हैं तो उन्होंने उस झूठ बोलने को आप से ही ग्रहण किया है। आप सच बोलते हैं तो उस सच बोलने को भी वे आप से ही ग्रहण करते हैं। आप जो करते हैं, तत्क्षण वह अपने बच्चे को दे देते हैं। आपके शब्द तो वह बाद में सुनता है, जो आप करते हैं वह पहले पहुंच जाता है।

अन्तकृत् सूत्र में बेटे के लिए एक शब्द आता है, अंगज। अंगज शब्द बेटे का पर्यायवाची शब्द है। वह आपका ही एक अंग है। जैसे मेरा हाथ मेरा ही एक अंग है, पैर है वह मेरा अंग है, कान है वह मेरा अंग है। ऐसे ही आपका पुत्र भी आपका एक अंग है, वह आपके ही शरीर का एक हिस्सा है, इसलिए उसे अंगज कहा गया है।

जैसे कोई व्यक्ति तम्बाकू खाता है तो उसका असर उसके सम्पूर्ण शरीर के ऊपर होता है। ऐसा नहीं है कि केवल जीभ के ऊपर ही असर होगा। संपूर्ण शरीर के ऊपर असर होगा। वैसे ही जो-जो भी

आप अपने जीवन में करते हैं उसका पूरा-पूरा प्रभाव आपके बच्चे के जीवन पर भी होता है। क्योंकि वह आपका ही एक अंग है।

बाल-विकास का सर्वप्रथम सूत्र है-आपको जो अपने बच्चों को सिखाना है वह पहले आप स्वयं करें। दो महीने पहले वैसा अभ्यास करें। फिर आप देखेंगे कि आपका कहा हुआ आपकी संतान के भीतर तक पहुंच जाएगा। यह निश्चित बात है। आप प्रयोग करके देख लेना। यह बात सुनने और समझने की ही बात नहीं है, यह प्रयोग करके देखने की बात है।

प्रामाणिक बनें माता–पिता

कुछ बातें हैं जो आप नहीं कर सकते हैं। परन्तु उन बातों को भी कहने का एक ढंग होता है, एक सूत्र होता है। उस सूत्र में आप अपना हृदय प्रस्तुत कर सकते हैं। उसको भी आपका बच्चा ग्रहण कर लेगा। वह कैसे?

मेरे ही जीवन का एक प्रसंग है। जब मैंने दीक्षा ली, तब एक दिन मैंने अपने गुरु जी से कहा, गुरु जी! विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से कहा था कि अगर आप परमात्मा को जानते हो तो मुझे भी उस परमात्मा के दर्शन करा दो, नहीं जानते हो तो मना कर दो। गुरु जी! मैं भी आपसे पूछता हूं कि आपको आत्मदर्शन का पता है तो मुझे भी आत्मदर्शन करवा दो।

तब गुरुजी ने मुझ से कहा था, देखो वत्स! न तो तुम ही विवेकानन्द हो और न ही मैं परमहंस हूं।

गुरुदेव की वह Honesty, वह प्रामाणिकता मुझे भीतर तक छू गई। यह Honesty और प्रामाणिकता एक पिता में भी, एक माता में भी अपने बच्चे के प्रति होनी चाहिए। Be honest with your child. Cheat मत करो अपने बच्चे को। आप क्या समझते हैं कि बच्चे छोटे हैं और कुछ भी समझते नहीं हैं। ऐसा नहीं है। वे सब

समझते हैं। एक वर्ष की आयु का बच्चा भी जान लेता है कि मेरा पिता मुझसे झूठ बोल रहा है। हां, अगर आपको कोई ऐसी आदत है कि आप चाहते हैं कि आपका बेटा उस आदत से दूर रहे तो उसको पूरी ईमानदारी से कहो कि बेटे, मैं ऐसा करता हूं लेकिन मुझे इससे बहुत तकलीफ हो रही है। मैं तुझसे बहुत प्यार करता हूं। तू ऐसा मत कर! यदि इस विधि से तुम अपने बच्चों को समझाते हो तो देखना तुम्हारी बात पहुंचेगी उनके भीतर तक।

लेकिन आप अक्सर क्या करते हो? आप बच्चे को डांट देते हो। ठीक है, आपके डर के कारण वह आपके सामने नहीं करेगा, आपके पीछे करेगा।

बाल विकास का दूसरा सूत्र है, Be honest with your children, अपने बच्चों के प्रति ईमानदार बनना। आपका एक झूठ बच्चे के अंदर बहुत बड़ा संस्कार उत्पन्न करता है। आज आपको लगता है कि यह एक छोटा-सा झूठ है। परन्तु वही छोटा-सा झूठ आगे चलकर बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है।

एक छोटे-से उदाहरण से इसे समझें। घर में कोई प्रसंग है और बच्चा स्कूल नहीं जाना चाहता है। तो आप कहते हैं कि कोई बात नहीं, मैं टीचर को लिख दूंगा कि तुम्हारी तबीयत खराब है। और आप वैसा कर भी देते हैं।

ऐसा अक्सर होता है। आपको लगता है कि यह एक छोटी-सी बात है। लेकिन आपने अपने बच्चे को सिखा दिया है कि झूठ बोलने से काम बनता है और सच बोलने से डांट पड़ती है। आज वह टीचर के साथ कर रहा है, कल वह आपके साथ भी वैसा ही करेगा। सबके साथ करेगा। फिर आप कहो कि मेरे से झूठ बोलता है तो उसे यह सिखाया किसने? आपने ही तो उसे सिखाया है कि झूठ बोलने से काम बनता है। आपने ही सिखाया, अब आप ही उसे भुगतिए!

दूसरी बात, अपने बच्चे के साथ प्रामाणिक रहें। आपकी बात वह सुनेगा, सीखेगा। आपके प्रति उसके मन में सम्मान पैदा होगा। अगर आप छिपाकर करोगे, पता तो तब भी चलेगा, लेकिन उसके मन में आपके प्रति आदर भाव नहीं रहेगा।

गर्भ संस्कार

जब बच्चा धीरे-धीरे बढ़ता है तब आप देखते हैं कि कुछ बातें उसके भीतर बड़ी स्वाभाविक होती हैं। जैसे कोई बच्चा होता है, वह जल्दी गाना सीख जाता है, कोई बच्चा जल्दी बोलना सीख जाता है,

कोई बच्चा जल्दी पढ़ना सीख जाता है। वे संस्कार कहाँ से आते हैं? उन संस्कारों के लिए भारत में एक विज्ञान विकसित हुआ। भारत ने उसको नाम दिया गर्भ संस्कार। जीव जब मां के गर्भ में प्रवेश करता है तब से इसकी शुरुआत होती है। आपने सुना है कि माता त्रिशला को चौदह स्वप्न आए जब भगवान के जीव ने मातृ-गर्भ में प्रवेश किया।

स्मरण रखें, प्रत्येक स्त्री के गर्भ में कोई महान जीव नहीं आ सकता है। क्योंकि महान जीव को उत्पन्न करने के लिए एक विशिष्ट तैयारी चाहिए। उसके लिए हमारे देश में एक सुंदर विज्ञान को विकसित किया गया। भारतीय संस्कृति में स्त्री के लिए चौंसठ कलाओं को विकसित किया गया था। उन कलाओं में यह भी सिखाया जाता था कि कैसे मां बनना। किस प्रकार से एक महान आत्मा को आमंत्रित करना। क्योंकि बच्चे को जन्म देने का मतलब है कि आप एक इंसान को इस दुनिया में ला रहे हैं। अगर कल को वह पुण्यशाली बना तो सारे विश्व का कल्याण होगा और अगर वह शैतान बन गया तो सारे विश्व का विनाश हो जाएगा। आप हिटलर को भी जन्म दे सकते

हो और विवेकानन्द को भी जन्म दे सकते हो। लेकिन आप किसे आमंत्रित करते हो यह आप पर निर्भर है। किसी दिव्य आत्मा को कैसे आमंत्रित किया जाए?

एक नीति ग्रंथ है जिसका नाम है पंचतंत्र। उसमें एक सुंदर श्लोक है। उसका भावार्थ है-जिस समय स्त्री ऋतुमती होती है उस समय अगर वह गर्भ धारण करती है तो निश्चित रूप से वह शैतान को जन्म देती है। इसके विपरीत जब स्त्री शुद्ध होती है, प्रार्थनामय भावों से उसका चित्त भरा होता है, उस अवस्था में जब वह गर्भ धारण करती है तब वह एक महापुरुष को जन्म देती है। ऐसे ही कोई एक्सीडेन्टल विवेकानन्द नहीं आ जाते हैं, एक्सीडेन्टल किसी बुद्ध का अवतरण नहीं हो जाता है। उसके लिए उनके माता-पिता का चरित्र और उनकी प्रार्थना बड़ा काम करती है।

एक बार मनोविज्ञान का एक अनुसंधान चला कि मनुष्य जाति में कुछ बातें हैं जो सामान्यतः प्रत्येक प्राणी में रहती हैं। जैसे एक बात है क्रोध। सभी को कहीं न कहीं क्रोध आता है। दूसरा है काम। सभी प्राणी काम में जाते हैं। वासना से व्यथित बनते हैं।

काम के संबंध में खोज-बीन करके मनोवैज्ञानिक इस तथ्य पर पहुंचे कि मनुष्य काम में इसलिए जाता है कि उसका जन्म ही काम से हुआ है। लेकिन भारतीय संस्कृति इस शोध को स्वीकार नहीं करती है। वह कहती है कि यदि किसी दिव्य आत्मा को जन्म देना है तो जन्म प्रार्थनापूर्वक हो। और यह हो सकता है। जब माता और पिता प्रार्थना-भरे भावों में हों, उस क्षण अवतरित जीव अवश्य ही सात्विक प्रवृत्ति का होता है।

सगर्भा माता का आचार–विचार–आहार

उसके बाद आगे की यात्रा की शुरुआत होती है। वह यात्रा है बालक के गर्भकाल की। गर्भावस्था में रहा हुआ बच्चा वही करेगा जो मां करेगी। बच्चा अपने आप श्वास भी नहीं लेता है। मां श्वास लेती

है तो उसी श्वास को बच्चा भी लेता है। मां जो श्वास छोड़ती है वही श्वास बच्चा भी छोड़ता है। मां जो विचार करती है, वही विचार बच्चा भी करता है। मां जो खाती है वही बच्चा भी खाता है। मां जो देखती है वही सब कुछ बच्चा भी देखता है। मां जो-जो करती है वही सब कुछ उसके भीतर रहा हुआ बच्चा भी करता है।

उस अवस्था में एक मां को कैसे अपना जीवन श्रेष्ठ बनाना चाहिए जिससे आने वाला बच्चा एक श्रेष्ठ मनुष्य बन सके। उसकी एक विशेष चर्या है। आपने कल्पसूत्र सुना होगा। उसमें त्रिशला माता का वर्णन आता है। यदि आपने ठीक से अध्ययन किया हो तो वहां वर्णन है कि जब भगवान् के जीव ने माता त्रिशला के गर्भ में प्रवेश किया तो माता ने चौदह शुभ स्वप्न देखे। फिर उसकी निद्रा भंग हो गई। उसका तन-मन हर्षित हो उठा। वह अपनी शय्या से उठी, अपने कक्ष से निकली, अपने पति सिद्धार्थ के कक्ष में पहुंची और उन्हें अपने स्वप्न सुनाए।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय माता त्रिशला शील का पालन कर रही थी। हमारी भारतीय संस्कृति का यह नियम है कि जब स्त्री गर्भवती होती है तो वह शील का पालन करती है। अगर उस नियम का उल्लंघन किया जाता है तो आप अपेक्षा नहीं कर सकते हैं कि एक श्रेष्ठ संतान आपके घर में प्रवेश ले।

इसीलिए अपने वक्तव्य की शुरूआत में ही मैंने कहा कि मां बनना एक तपश्चर्या है, एक साधना है। यह साधारण बात नहीं है। एक बहुत बड़ी बात है। आप एक तेजस्वी संतान चाहते हैं तो पहले आपको तपना जरूरी है। जैसी भूमि होगी वैसा ही उसमें से वृक्ष निकलेगा। जैसा बीज होगा वैसा फल होगा।

स्मरण रखें, भारतीय संस्कृति का यह नियम था कि जब से बच्चा गर्भ में आता है तब से लेकर जब तक बच्चा जन्म ले और माता का दुग्धपान करे तब तक उस बच्चे के माता और पिता के लिए शील का पालन अनिवार्य था।

गर्भकाल में माता को किसी महापुरुष का पन्द्रह मिनट के लिए प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से उस महापुरुष की महानता संस्कार बनकर उसके गर्भस्थ शिशु में प्रवेश कर जाएगी। गर्भकाल में एक माता जिन भावों, व्यक्तियों अथवा विचारों से जिस रूप में प्रभावित होती है उसका बच्चा भी उस प्रभाव से प्रभावित बनता है।

इस संदर्भ में मैं दो उदाहरण प्रस्तुत करूंगा।

एक महिला जब गर्भवती थी तो उसके घर में एक अफ्रीकन बच्चे का चित्र लगा हुआ था। वह उस बच्चे के चित्र को प्रतिदिन देखा करती। वह चित्र उसे बहुत अच्छा लगता था। उसका परिणाम यह हुआ कि जब उसने बच्चे को जन्म दिया तो उस नवजात बच्चे का रंग और रूप उस चित्रस्थ बच्चे के रंग-रूप के जैसा ही था।

एक अन्य उदाहरण- यह एक संस्मरण है। एक महिला ने दस दिन का ध्यान-शिविर किया। उस अवधि में वह गर्भवती थी। शिविर में उसका ध्यान का आसन एक अंग्रेज महिला की बगल में था। निरन्तर दस दिन तक वह अंग्रेज महिला उसके समक्ष रही। उसका परिणाम यह रहा कि उसने जिस बच्ची को जन्म दिया उस बच्ची का रंग रूप उस अंग्रेज महिला से बहुत ही मिलता जुलता था।

ये घटनांए मैंने आपसे इसलिए कही कि गर्भकाल में माता जिस भी दृश्य को भावपूर्ण बनकर देखती है उस दृश्य की छाया उसके गर्भस्थ शिशु में प्रवेश पा लेती है। इसलिए मैंने कहा, एक श्रेष्ठ संतान को जन्म देने के लिए माता को प्रतिदिन किसी श्रेष्ठ पुरुष का ध्यान करना चाहिए, जिससे उस श्रेष्ठ पुरुष की श्रेष्ठता उस गर्भस्थ शिशु में भी प्रवेश ले सके।

इसके अतिरिक्त सगर्भा स्त्री किसी स्तोत्र अथवा मंत्र का प्रतिदिन जाप करे।

कई लोग मुझसे कहते हैं कि हम लोगस्स अथवा कोई अन्य स्त्रोत पढ़ते हैं, उनका अर्थ तो हमें मालूम नहीं होता है। आपको अर्थ मालूम नहीं है तो भी उस स्तोत्र के शब्दों की तरंगें आपके मन और शरीर को प्रभावित करती हैं। आज का विज्ञान कहता है, हमारे जो जींस हैं उन्हीं से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है और उन जीन्स को भी बदला नहीं जा सकता है। लेकिन भारत के ऋषि कहते हैं उन जीन्स को भी बदला जा सकता है। उनको बदलने का उपाय है मंत्र और स्तोत्र। अगर आप विधिपूर्वक, पूर्ण ध्यानस्थ होकर स्तोत्र और मंत्र का उच्चारण करते हो तो उसकी तरंगें आपके भीतर के कोष तक पहुंचती हैं और उससे आपके कोष रूपान्तरित बनते हैं। तो दूसरा बहुत ही जरूरी नियम है कि प्रत्येक स्त्री जिसको दिव्य बालक को जन्म देना है वह प्रतिदिन किसी मंत्र अथवा स्तोत्र का पंद्रह मिनट के लिए शान्त-चित्त से उच्चारण करे।

तृतीय नियम है, सगर्भ स्त्री प्रतिदिन कुछ देर के लिए अपने शरीर को शिथिल करने का अभ्यास करे। इसको योगनिद्रा अथवा शवासन कहते हैं। यह क्यों बताया गया? जैसे आपने आज से बीस वर्ष पहले देखा हो तो जितने भी बच्चों का जन्म होता था एकदम स्वाभाविक रूप से होता था, Natural Delivery, लेकिन आज आप देखें तो सत्तर से पचहत्तर प्रतिशत बच्चों का जन्म अस्पताल में होता

है। क्यों ऐसा हो गया? किस कारण ऐसा हो गया? क्योंकि आज से पन्द्रह वर्ष पहले मनुष्य जितना शान्त था उतनी शान्ति आज नहीं रही। शरीर तनाव से भर गया है एकदम। जब बच्चे का जन्म होता है तो मां भरी हुई है तनाव से, अशान्ति से, तो शरीर सिकुड़ता है और बच्चा बाहर आना चाहता है तो बहुत दर्द और पीड़ा होती है। फिर ऑपरेशन करना पड़ता है। अमेरिका में वैज्ञानिकों ने प्रयोग किया, भारत वाले तो नहीं समझ पाए, लेकिन भारत की बात आज लोग बाहर लेकर गए हैं। उन्होंने यह परीक्षण किया कि नौ महीने किसी स्त्री को योगनिद्रा का, शवासन का विधिवत् अभ्यास कराया, प्रतिदिन एक घंटा कि How to relax your body, कि कैसे शरीर को शिथिल छोड़ देना। नौ महीने के बाद देखा कि बिना किसी दर्द के स्वाभाविक रूप से बच्चे का जन्म हुआ। जो बच्चा पैदा हुआ वह भी कम रोता था। सदा ही प्रसन्न रहता था। शान्त रहता था। तो यह बहुत ही जरूरी बात है कि वह महिला जिसे बच्चे को जन्म देना है एक घंटा अपने लिए निकाले और शवासन, योगनिद्रा या ध्यान का अभ्यास करे।

आप में से बहुत से भाई-बहन सोचेंगे कि हमारे बच्चे तो बहुत बड़े हो गए हैं। अब हमें इसकी क्या जरूरत है। लेकिन यह सब कुछ मैं आपको इसलिए बता रहा हूं कि ये बातें हम कभी भी सोचते नहीं हैं।

जब आपके बच्चे पंद्रह और बीस वर्ष के हो जाते हैं तो तब आप कहते हैं कि महाराज! इन्हें कुछ सिखाओ। लेकिन तब क्या सिखाएं? बालक के निर्माण में शुरू से ही जागरूक रहना जरूरी है। शुरूआत अगर अच्छी करोगे तो ही उसका परिणाम अच्छा होगा। यह बात सभी को समझनी जरूरी है। तभी एक नवीन संस्कृति का जन्म होगा। अन्यथा हम वहीं के वहीं अटके रह जाएंगे।

ये स्वर्णिम नियम हैं माता के लिए, प्रतिदिन पन्द्रह मिनट के लिए धर्म-ध्यान, स्तोत्र का पाठ और शवासन का अभ्यास।

इससे आगे का एक और अति महत्त्वपूर्ण सूत्र है- सात्विक आहार। अगर आहार सात्विक होगा तो ही माता तन्दुरूस्त रहेगी और आगे जाकर के तन्दुरूस्त बच्चे को जन्म देगी। माताएं प्रतिदिन चाट-मसाले खाएंगी तो उससे आने वाली संतानों को क्या भविष्य होगा यह सहज ही समझा जा सकता है।

कैसे दें हंसते हुए बालक को जन्म

यह हुई गर्भ संस्कार की बातें। अब इससे आगे की बात पर हम चिंतन करेंगे। बच्चा नौ महीने माता के गर्भ में रहकर बाहर आता है। अक्सर हमारी यह मान्यता है कि बच्चे को जन्म लेते ही रोना चाहिए। अगर बच्चा जन्म लेते ही नहीं रोता है तो परिवार के लोग रोने लगते हैं। डॉक्टर बच्चे को रुलाने का उपाय करता है और जब बच्चा रोता है तो शेष सब हंसने लगते हैं।

फ्रांस में यह सोचा गया कि बच्चा रोते हुए ही क्यों जन्म ले? क्या वह हंसते हुए जन्म नहीं ले सकता है? उन्होंने खोजा कि आखिर बच्चा क्यों रोता है? किसलिए रोता है बच्चा? पहला कारण उन्होंने खोजा कि जब बच्चे का जन्म होता है तो तुरन्त उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उसे मां से अलग कर दिया जाता है। उसकी नाल काट दी जाती है और उसे मां से अलग कर दिया जाता है। तो जो

बच्चा नौ महीने तक मां के साथ एक होकर के रहा... कि मैं ही मां हूं और मां ही मैं हूं वह अपने आपको अलग नहीं समझता, अभी वह एक ही है, उसको अगर अलग कर दिया जाए तो उसके भीतर आघात लगेगा या नहीं लगेगा? उसको बहुत बड़ा शॉक लगता है कि मैं कहाँ आ गया। किस जगह आ गया। किसके हाथों में आ गया।

फ्रांस में डॉक्टरों ने अपनी शोध के अनुसार एक नवीन जन्म-प्रणाली को विकसित किया। उसके अनुसार वे जन्म लेते ही बच्चे को मां के पेट पर लिटा देते हैं। इससे बच्चे को भी अच्छा लगता है और मां को भी अच्छा लगता है।

बच्चा क्यों रोता है? क्योंकि बच्चे के फेफड़े के भीतर कफ जमा होता है। जब वह रोता है तो कफ साफ हो जाता है और वह श्वास लेने की शुरुआत करता है। फ्रांस के डॉक्टरों ने बच्चे को मां के पेट पर लेटा दिया और फिर बच्चे को थोड़ा समय दिया। फिर बच्चे ने धीरे-धीरे श्वास लेने की शुरुआत की। जब बच्चा आराम से श्वास लेने लगा जब उसे धीरे से मां से अलग किया और उसे हल्के गर्म पानी के टब में

रखा। क्योंकि जब बच्चा मां के भीतर होता है तो वह तैरती हुई अवस्था में रहता है। एक तरल द्रव के अन्दर वह तैरता रहता है। तो उसे गर्म पानी के अन्दर रखा गया। उस गर्म पानी का उतना ही तापमान रखा जितना मनुष्य के शरीर का तापमान होता है। वह सब बच्चे को बहुत अच्छा लगा और उन्होंने देखा कि बच्चे ने हंसने की शुरूआत की।

क्या ऐसा जन्म प्रत्येक बच्चे का नहीं हो सकता है? हो सकता है, लेकिन उसके लिए उतनी समझदारी चाहिए।

चश्मा क्यों?

बच्चे के जन्म के संबंध में फ्रांस में अन्य अनेक शोध किए गए हैं। उनके आगे के शोध के बारे में मैं आपको बताऊंगा। आज से पंद्रह-बीस वर्ष पहले तक बच्चों को बहुत ही कम चश्मों की आवश्यकता पड़ती थी। उस समय की तुलना में आज बहुत अधिक बच्चों को चश्मे की आवश्यकता अनुभव होने लगी है। क्यों? अक्सर हम कह देते हैं कि बच्चे ज्यादा टी.वी. देखते हैं इसलिए उन्हे चश्मे लगते हैं। यह तो एक कारण है ही, लेकिन एक अन्य कारण भी है।

भारत में जब किसी भी बच्चे का जन्म होता था तो अंधेरे कमरे में जहां घी का दीपक जलाया जाता था वहां पर बच्चे का जन्म होता था। लेकिन आज बच्चों का जन्म अस्पताल में होता है जहां पर बड़े-बड़े बल्ब लगे होते हैं। थोड़ा विचार करें, कोई बच्चा नौ महीने अंधकार में रहा

हो और फिर अकस्मात् उसे फ्लैश लाइट के सामने रख दो तो उसका क्या हाल होगा? स्वाभाविक है कि उसकी आंखें चौंधिया जाएंगी।

आप स्वयं कल्पना कीजिए कि आपको आठ दिनों के लिए किसी अंधेरे कमरे में बंद कर दिया जाए और फिर भरी दोपहर में सूरज के समक्ष खड़ा कर दिया जाए तो आपकी आंखें एकदम से चौंधिया जाएंगी। उस तेज रोशनी को आपकी आंखे एकदम से सहन नहीं कर पाएंगी। उससे आपकी आंखों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।

यही दुष्प्रभाव आज बच्चे की कोमल आंखों पर होता है। उसकी आंखें प्रथम बार ही तीव्र प्रकाश में खुलती हैं। उस तीव्र प्रकाश का दुष्प्रभाव फिर उसे जीवन-भर झेलना पड़ता है।

भारत में यह नियम था कि बच्चे को जन्म लेने के पश्चात् एक महीने तक घी के दीए के प्रकाश में रखा जाता था। उसके बाद ही उसे धीरे-धीरे बाह्य प्रकाश में लाया जाता था।

यह है जन्म का विज्ञान।

ओंकार संस्कार

जन्म के बाद बच्चा बढ़ने की शुरूआत करता है। प्रत्येक माता-पिता की यह इच्छा होती है कि उसका बच्चा जल्दी बोलना सीखे, मधुर बोलना सीखे, उसके शब्द सुस्पष्ट हों, उच्चारण अच्छा हो। उसके लिए हमारे भारतवर्ष में एक छोटी-सी विधि का प्रयोग किया जाता था। जैसे ही किसी बच्चे का जन्म होता, उसे कुछ भी पिलाने से पूर्व उसकी जीभ पर चांदी की बारीक शलाका से अथवा वृक्ष की कोमल डाली से ओंकार लिखा जाता था। आप सोचेंगे कि वैसा करने से क्या फर्क पड़ता है। पर फर्क पड़ता है। वैसा करने से बालक के भीतर वाणी का, सरस्वती का विकास बहुत जल्दी होने लगता है। जिन बच्चों का ओंकार-संस्कार किया जाता था वे शेष बच्चों की तुलना में शीघ्र बोलना सीखते थे।

कैसे हों खिलौने

बालक धीरे-धीरे बढ़ता है। चलना सीखता है। चलना सीखता है तो उसके और उसकी माता के मध्य दूरी बढ़ने लगती है। अभी तक तो वह प्रत्येक क्षण माता की गोद में रहता था। अब वह गोद से दूर जाने की शुरुआत करता है। वह एक नवीन संसार से रिश्ते निर्मित करने शुरु करता है। वह नवीन संसार क्या है? वह नवीन संसार है, खिलौनों का संसार। बच्चा खिलौनों से खेलने की शुरूआत करता है।

बच्चे को कैसे खिलौनों से खेलना चाहिए? यह एक अहम् प्रश्न है। बच्चे में खेलने की प्रवृति होती है। खेलने से बच्चे का विकास होता है। पहली बात तो यह ध्यान में रखें कि हमें बच्चे को खेलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि हम बच्चों को खेलने से रोकेंगे अथवा हतोत्साहित करेंगे तो बच्चों का विकास भी ठीक से नहीं हो पाएगा। उनका शरीर अवरुद्ध रह जाएगा। वे अपूर्ण और निर्बल रह जाएंगे।

प्रश्न उभरता है कि बच्चों को किन और कैसे खिलौनों से खेलना चाहिए। आज से तीस-चालीस या पचास-साठ वर्ष पूर्व जब मैं स्वयं एक बालक था, उस समय बच्चों के पास अधिक खिलौने नहीं होते थे। उस समय अधिकतर बच्चे मिट्टी को ही खिलौना मानकर खेलते थे। आज खिलौनों का युग है। बच्चों के पास ढेर सारे खिलौने होते हैं। बच्चों को खेलने के लिए हमें कैसे खिलौने देने चाहिएं यहां पर हमारे विवेक और चिन्तन की परीक्षा होती है। क्योंकि जैसे खिलौनों से आपके बच्चे खेलेंगे उसी प्रकार का उनका चिन्तन बनेगा और उसी चिन्तन से उनका चारित्र निकलेगा।

एक बार मैं सांध्य-भ्रमण पर था। मैं एक पार्क के निकट था। वहां मैंने दो छोटे बच्चों को खेलते देखा। उनमें एक भाई था और एक बहन थी। भाई पार्क की दीवार पर खड़ा था। उसने अपनी बहन को

पुकारा कि इधर आओ। बहन ने कहा, मैं नहीं आऊंगी। उस नन्हे भाई ने दो-तीन बार अपनी बहन को अपने पास बुलाया, पर प्रत्येक बार बहन ने आने से इन्कार कर दिया। इससे भाई को क्रोध आ गया। उसने कहा, नहीं आओगी तो मैं तुम्हें गोली मार दूंगा। ऐसा कहकर उसने अपनी खिलौना पिस्तौल बहन की दिशा में तान दी।

अक्सर हम ऐसा करते हुए और ऐसे शब्द बोलते हुए बच्चों को देखा करते हैं। इसे बहुत छोटी-सी बात मानकर हम इग्नोर भी कर देते हैं। परन्तु आप जरा विचार करेंगे तो पाएंगे कि यह छोटी बात नहीं है। क्योंकि पिस्तोल की संस्कृति उस बालक की संस्कृति बन रही है। आज एक प्लास्टिक की बन्दूक उसके हाथ में है, कल वास्तविक बन्दूक भी उसके हाथों में आ जाएगी। एक प्लास्टिक की बन्दूक ने ही उसके भीतर ये विचार भर दिए हैं कि मैं तुम्हें मार दूंगा। कल जब वह बड़ा होगा तो उसके हिंसा-हत्या में चले जाने की बहुत-सी संभावनाएं होंगी।

बच्चों को आप जो खिलौने देते हो वे खिलौने उन पर बहुत बड़ा असर करते हैं। इसलिए हमें अपने बच्चों के हाथों में खिलौने थमाते हुए बहुत सचेत रहना चाहिए। ऐसे खिलौने बच्चों को कभी नहीं देने चाहिएं जिनसे खेलते हुए बच्चों में हिंसा, घृणा और विद्वेष के भाव प्रबल बनें।

मिट्टी है सर्वोत्तम खिलौना

खिलौने ऐसे होने चाहिएं जो प्राकृतिक हों। पहले हमारे बच्चे मिट्टी में खेला करते थे। मैं मानता हूं कि मिट्टी सबसे श्रेष्ठ खिलौना है। क्योंकि मिट्टी के भीतर जो प्राणशक्ति है वह कहीं पर भी नहीं है। मिट्टी में खेलने से बच्चे में प्राणऊर्जा का विकास होता है।

पर सच है कि आज वह मिट्टी ही उपलब्ध नहीं है जहां खेलकर बच्चे अपने भीतर प्राणशक्ति का विकास कर सकें। शहरीकरण ने शुद्ध मिट्टी और खुले वातावरण को निगल लिया है। आज विशुद्ध मिट्टी विलुप्त हो गई है। कच्चे रास्तों का स्थान डामर की सड़कों ने ले लिया है। और डामर से कोई प्राणशक्ति नहीं निकलती है। इसके विपरीत डामर आपकी प्राणशक्ति को खींच लेता है।

यदि उपलब्ध हो सके स्वच्छ मिट्टी में बच्चों को खेलने दीजिए! ऐसे खिलौनों से बच्चों को दूर रखिए जो बच्चों में विपरीत भावों को जन्म देते हैं। क्योंकि खिलौने तो वे आपके लिए हैं। बच्चो के लिए वे खिलौने जीवन्त हैं, सच हैं। उन्हें वे अपना ही एक अंग मानते हैं। इसलिए अहिंसात्मक खिलौने बच्चों को दीजिए!

जब बच्चा चार और पांच वर्ष का होता है तो आप उसे पढ़ने के लिए विद्यालय भेजते हैं। बच्चे को किस उम्र में विद्यालय भेजना चाहिए यह प्रश्न एक विशेष चिन्तन की अपेक्षा रखता है। परन्तु समझने वाला तथ्य यह है कि जिस दिन बच्चे का जन्म हुआ है उस दिन उसके भीतर जो ग्रहणशीलता होती है, उस ग्रहणशीलता का निरंतर ह्रास होता जाता है। पहले दिन की तुलना में दूसरे दिन और दूसरे दिन की तुलना में तीसरे दिन उसकी ग्राहकता न्यून से न्यूनतर होती जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि बहुत बचपन में बालक को जो सिखाया जा सकता है वह बाद में सिखाया जाना कठिन हो जाता है।

वैज्ञानिक शिक्षा विधि

बच्चे को कैसे सिखाया जाए इस विषय पर भी शिक्षा-वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों ने बारीक अध्ययन और चिन्तन किया है। उनके अनुसार जैसे एक बच्चे को बताना है कि यह वृक्ष है। उसके लिए वे एक वृक्ष का चित्र बच्चे के सामने एक सैकिंड के लिए रखेंगे।

और फिर शब्द रखेंगे वृक्ष। केवल एक सैकिंड के लिए, ज्यादा देर तक नहीं। फिर उसको हटा लेंगे। फिर दूसरा चित्र रखेंगे। उसके लिए शब्द रखेंगे और हटा लेंगे। फिर

दूसरा चित्र रखेंगे और हटा लेंगे। ऐसे प्रतिदिन दस शब्द वे रखते हैं। और प्रतिदिन एक-एक चित्र को हटाते हैं। आज जो दस चित्र दिखाए हैं, कल उनमें से एक हटा लेंगे और उसके स्थान पर एक नया चित्र और शब्द दिखाएंगे। ऐसा वे निरंतर एक वर्ष तक करते हैं। इस विधि के जो परिणाम आते हैं। उनके अनुसार मात्र तीन वर्ष की आयु में बच्चा न्यूजपेपर पढ़ने लगता है।

यह जो मैं बता रहा हूं ये मनघड़ंत कहानियां नहीं हैं। ऐसा हुआ है और होता है। उसके लिए एक ट्रेनिंग-सेंटर की आवश्यकता है। ऐसे ट्रेनिंग-सेंटरज् फ्लोरिडा में विकसित और स्थापित हुए हैं। भारत में वैसे सेंटर नहीं हैं। परन्तु यहां भी वैसे सैंटर स्थापित किए जा सकते हैं। बचपन से आप जो बच्चे को सिखाते हो उसे बच्चा तुरंत ग्रहण कर लेता है। उन्होंने यह देखा कि बच्चे के सामने सौ बिंदु रखे जाएं और निन्यानवे बिन्दु रखे जाएं तो बच्चा उन दोनों के मध्य फर्क कर लेता है कि ये सौ बिन्दु हैं और ये निन्यानवे बिन्दु हैं। उसका दिमाग इतना तेज होता है।

स्मरण रखें, यह सिखाने का काम एक अध्यापक नहीं कर सकता है। यह एक मां कर सकती है या एक पिता कर सकता है। अन्य कोई नहीं कर सकता है। बच्चे को जब कोई अध्यापक सिखाता है तो वह केवल शब्दों को सिखाता है। लेकिन बच्चे को कुछ भी सिखाने के लिए जरूरी है कि शिक्षक उससे जुड़ जाए। उसके साथ एकरूप हो जाए। जब तक बच्चे के साथ एकरूप नहीं हो जाता है,

जब तक उसे यह नहीं लगता है कि यह मेरे ही जैसा है तब तक वह सीखने को राजी नहीं होता है।

जब एक अध्यापक बच्चे को पढ़ाता है तो अध्यापक एक अध्यापक होता है और बच्चा एक विद्यार्थी होता है। उनके मध्य में रिलेशनशिप निर्मित नहीं हो पाती है। एकरूपता का संबंध नहीं जुड़ पाता है। इसीलिए बच्चा सीखने में मन नहीं लगा पाता है। उसके लिए जरूरी है कि शिक्षक बच्चे के तल पर पहुंचकर उसके साथ एकरूपता का संबंध स्थापित करे।

सम्मानपूर्ण व्यवहार रखें बच्चों के साथ

हमें बच्चों के साथ व्यवहार कैसे करना चाहिए? यह भी एक अहं प्रश्न है। सदैव स्मरण रखें कि हमें बच्चों के साथ आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। 'अरे', 'हे', 'तू' जैसे तुच्छ शब्दों का व्यवहार बच्चों के साथ नहीं करना चाहिए। बच्चों के साथ आप जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वही भाषा वे सीखते हैं। लेकिन होता यह है कि आप बच्चों को सिखाते तो आदर और मान हैं परंतु उनके साथ व्यवहार आनदरपूर्ण करते हैं। क्योंकि बच्चा व्यवहार को शीघ्र पकड़ता है, इसलिए वह आपके व्यवहार को तो पकड़ लेता है पर आप जो उसे शिक्षा देते हैं आदर और मान की, उसे वह मात्र फारमेल्टी मानकर सीखता है। आपको उसके साथ आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिए जिससे वह समझ सके कि आदर केवल एक फॉरमेल्टी ही नहीं है बल्कि वह हृदय का एक भाव है।

स्मरण रखें, आप जो करेंगे वही सब कुछ आपका बच्चा सीखेगा। आपकी वाणी आपके बच्चे की वाणी बनेगी, आपका आचरण आपके बच्चे का आचरण बनेगा, आपका व्यवहार आपके बच्चे का व्यवहार बनेगा। आप जो हैं उसकी प्रतिध्वनि आपके बच्चे से उठेगी। इसीलिए तो उसे आपका अंगज कहा गया है। इसलिए

बच्चों को कुछ भी सिखाने से पहले वह सब कुछ आपको भी सीखना चाहिए। यदि केवल शब्दों से ही आप सिखाते रहे तो बच्चे शब्द ही सीख पाएंगे। वह सीखा हुआ कदापि उनका आचरण नहीं बन पाएगा।

माता-पिता को अपने बच्चों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने चाहिएं। बच्चों की बातें ध्यान देकर सुननी चाहिएं। इससे बच्चों का सम्यक्-विकास होता है। यदि आप बच्चों की बात को ध्यान से नहीं सुनते हैं तो उन्हें इसका आघात लगता है जो उनके विकास को अवरूद्ध बना देता है।

एक दिन एक छोटी-सी बच्ची मेरे पास आई। वह उदास थी। मैंने उसकी उदासी का कारण पूछा तो उसने कहा, गुरु जी! आज मैं बहुत दुखी हूँ! मैने पूछा कि तुम क्यों दुखी हो? उसने कहा, आज मेरा परीक्षा-परिणाम आया है। मैंने पूछा, क्या अंक अच्छे नहीं आए? उसने कहा, बहुत अच्छे अंक आए हैं। मुझे 85 प्रतिशत अंक प्राप्त हुए हैं। मैंने पूछा, इतने अच्छे अंक तुम्हें प्राप्त हुए हैं, फिर तुम दुखी क्यों हो? उसने कहा, मैं अपने अंक दिखाने के लिए पापा के पास गई तो उन्होंने मुझे डांट दिया और कहा, कि जाओ अभी मेरे पास समय नहीं है।

मैं उस बच्ची का दुख समझ गया। आपको यह एक छोटी-सी बात लगेगी। पर मेरी दृष्टि में यह एक बहुत बड़ी बात है। ऐसे में अपने बच्चों को डांटकर आप उनके साथ घोर अन्याय करते हैं। उनके विकास के द्वारों को अवरुद्ध कर देते हैं। आपके वचनों से उन्हें आघात लगता है। फिर उसका परिणाम विपरीत निकलता है। आज आप उसकी बात नहीं सुनते हो, कल वह आपकी बात नहीं सुनेगा।

अन्तिम बात के रूप में मैं कहना चाहूंगा कि आप अपने बच्चों

के साथ बैठकर भोजन करें। आज जीवन बड़ा व्यस्त है। यदि प्रतिदिन ऐसा न कर सको तो कम-से-कम सप्ताह में एक बार अपने बच्चों के साथ बैठकर भोजन अवश्य करें। उससे आपकी बच्चों के प्रति आत्मीयता में वृद्धि होगी।

ये छोटी-छोटी बातें मैंने आपके समक्ष रखीं ये बातें मात्र कहने और सुनने के लिए नहीं हैं। इन्हे प्रयोग में लाएं। क्योंकि प्रयोग पर ही परिणाम की प्राप्ति होगी। आशा है आप इन छोटे-छोटे सूत्रों पर अवश्य प्रयोग करेंगे। यदि ऐसा करेंगे तो निश्चित ही आप अपने घर को स्वर्ग के रूप में पाएंगे।

सम्यक् शिक्षा का प्रारम्भ

माँ बच्चे की प्रथम गुरु होती है। उस पर बच्चे का सर्वाधिक दायित्व है। माँ अपने दायित्व को समझे। वह एक गुरु का दायित्व निभाए। वह बच्चे को शिक्षित करे। पर उसके लिए जरूरी है कि माँ के स्वयं के जीवन में गुरुता का विकास हो। माँ स्वयं उन सिद्धांतों को आत्मसात् करे। इसीलिए मैं अक्सर कहा करता हूं कि माँ होना तपश्चर्या है। एक साधना है।

2

सम्यक्-शिक्षा का प्रारंभ

कुशल/अकुशल खिलाड़ी

आज का हमारा विषय है सम्यक् शिक्षा का प्रारंभ। इसको समझने के लिए हम जे. कृष्णामूर्ति के एक वक्तव्य को समझें। जे. कृष्णामूर्ति एक महान विचारक थे। उन्होंने कहा है कि जीवन ताश के पत्तों के खेल के समान है। ताश के पत्तों के खेल में आपके साथ खेलने के लिए कौन-कौन बैठेगा यह आपके हाथ में नहीं है। आपके साथ खेलने वाले कितने खिलाड़ी होंगे यह भी आपके हाथ में नहीं है। आपको खेलने के लिए कैसे पत्ते मिलेंगे यह भी आपके हाथ में नहीं हैं। फिर आपके हाथ में क्या है? आपके हाथ में इतना भर है कि उस खेल को आप खेलेंगे कैसे। खिलाड़ी अगर कामयाब है

तो पत्ते नाकामयाब भी हुए तो भी वह बाजी को जीत लेता है और यदि खिलाड़ी नाकामयाब है तो कामयाब पत्ते पाकर भी वह हार जाता है।

ऐसा ही हमारा जीवन है। जीवन में आपको कैसी परिस्थितियां मिलेंगी, कैसा परिवार मिलेगा, कौन आपके माता, पिता, भाई और बहन होंगे, किस समाज में आपका जन्म होगा, कहाँ पर आप बड़े

होंगे, यह आपके हाथ में नहीं है। यह आपको मिल गया जन्म से। आपका जन्म हुआ, आपको माता मिल गई, पिता मिल गए। आपका जन्म हुआ, आपको समाज मिल गया, देश मिल गया। आपका जन्म हुआ, आपको परिवार मिल गया, खानदान मिल गया। लेकिन उन परिस्थितियों के बीच में रहते हुए आप जीवन को कैसे जीएंगे, आनंद या मुस्कान से भरकर अथवा आंसू या संताप से भरकर, यह आपके हाथ में है। और यहीं पर प्रारंभ होता है सम्यक् शिक्षा का।

सम्यक् शिक्षा

आज के अपने वक्तव्य का जो शीर्षक मैंने दिया है 'सम्यक् शिक्षा', क्या यह शीर्षक सही है? क्योंकि यदि विचार करें तो हम पाएंगे कि शिक्षा शब्द के भीतर ही सम्यक् शब्द अन्तर्निहीत हो गया है। शिक्षा सम्यक् ही होती है। जो सम्यक् नहीं है भला वह शिक्षा हो ही कैसे सकती है। जो सम्यक् नहीं है वह शिक्षा ही नहीं है।

मां से पुत्र ने पूछा, मां! क्या तुम मुझसे सच्चा प्यार करती हो?

यह एक सर्वसाधारण प्रश्न है जो अक्सर पूछा जाता है। आपने भी अपने जीवन में यह प्रश्न अनेक लोगों से पूछा होगा। आपको विभिन्न उत्तर मिले होंगे। परन्तु इस प्रश्न का एक ही उत्तर है, और वह उत्तर है, जो सच्चा है वही प्यार है। प्यार सदैव सच्चा होता है। उसमें झूठ के लिए कतई अवकाश नहीं है। प्यार के क्षेत्र में झूठ के लिए कोई प्रवेश नहीं है। जहाँ झूठ का प्रवेश है वहां से प्यार विदा हो जाता है। वहां मोह रह सकता है, प्यार नहीं। क्योंकि मोह सदैव झूठा ही होता है। क्षणिक होता है। प्यार शाश्वत और सच होता है।

ऐसे ही जो सम्यक् है वही शिक्षा है, जो सम्यक् नहीं है वह शिक्षा है ही नहीं। सम्यक् शिक्षा हमें जीवन को जीने की कला सिखाती है। क्या है सम्यक् शिक्षा? किसे कहना चाहिए सम्यक् शिक्षा?

शिक्षा : शिक्षा या सजा?

हिन्दी भाषा में शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। शिक्षा शब्द के भी दो अर्थ हैं। एक अर्थ है पढ़ाई, लिखाई, सिखाना आदि। दूसरा अर्थ है, सजा। साधारणतः शिक्षा शब्द का उपयोग सजा के लिए भी किया जाता है, जैसे बच्चे कह देते हैं कि आज होमवर्क नहीं किया है तुझे

शिक्षा मिलेगी। शिक्षा मिलेगी अर्थात् अध्यापक से सजा मिलेगी।

शिक्षा के संबंध में हमें विचार करना है कि हम जो अपने बच्चों को शिक्षा देते हैं वह वास्तव में शिक्षा है या शिक्षा (सजा) है? हम अपने बच्चों को क्या देते हैं इसका उत्तर हमें बच्चों से ही प्राप्त करना होगा। आप अपने बच्चों से पूछिए कि वर्ष भर में उन्हें कौन से महीने सर्वाधिक प्रिय लगते हैं। तो आपको उत्तर मिलेगा, छुट्टियों के दो महीने बड़े प्रिय लगते हैं।

स्कूल नहीं जाना बच्चों के लिए सर्वाधिक प्रिय बात है। ऐसा क्यों है? इसका साफ अर्थ है कि बच्चे शिक्षा को भारी बोझ मानते हैं। पढ़ना उन्हें बहुत अप्रिय लगता है। उन्हें पढ़ना अप्रिय क्यों लगता है? क्योंकि हमारी शिक्षा-प्रणाली ऐसी है कि उससे बच्चे टेंशन में आ जाते हैं। हमने शिक्षा के लिए जिन लक्ष्यों को निर्धारित कर दिया है वे लक्ष्य इतने पौद्गलिक हैं कि वे आनंद के विषय हो ही नहीं सकते हैं। बालक जिन लक्ष्यों से पूर्णतः अपरिचित हैं उन लक्ष्यों में जकड़कर हम उनके लिए शिक्षा का निर्धारण करते हैं।

शिक्षा का लक्ष्य

क्या लक्ष्य है आज की शिक्षा का?

मैं अहमदनगर में था। एक बच्चा मेरे पास आया। मैंने पूछा, तुम क्या करते हो? उसने कहा, मैं आठवीं क्लास में पढ़ता हूं। मैंने पूछा, आगे क्या करोगे? उसने कहा, मैं खूब मेहनत करूंगा और दसवीं कक्षा में अच्छे-से-अच्छे अंक प्राप्त करूंगा।

मैंने पूछा, फिर क्या करोगे?

फिर मैं किसी बढ़िया कॉलेज में एडमिशन लूंगा।

उसके बाद क्या करोगे?

मैं इंजीनियर बनूंगा।

तब?

तब मैं बहुत धन कमाऊंगा।

उसके बाद?

उसके बाद बढ़िया घर बनाऊंगा।

फिर?

फिर आराम से बैठूंगा।

मैंने कहा, क्या आराम से बैठने के लिए यह सब कुछ करना अनिवार्य है? क्या इस लम्बे-चौड़े व्यायाम का एकमात्र लक्ष्य आराम ही है? यदि हां, तो यह सब कुछ करने की भी आवश्यकता नहीं है।

मैंने कहा, देख बच्चे! गली के नुक्कड़ पर बैठा वह कुत्ता कितने आराम में है। तुम इतना कुछ करके जिस आराम को तलाशोगे उसने बिना कुछ किए ही उस आराम को पा लिया है। फर्क इतना है कि तुम जरा बढ़िया कपड़े पहने लोगे पर उसे तो कपड़ों की आवश्यकता

ही नहीं है। तुम घी में भिगोकर रोटी खा लोगे, वह सूखी रोटी ही खाएगा। तुम गद्दे पर सोओगे, वह पृथ्वी पर सोएगा। यह बहुत फर्क नहीं है। फिर इतना सब करना अनिवार्य क्यों?

जरा चिंतन कीजिए कि आज शिक्षा का उद्देश्य क्या धन कमाना ही नहीं रह गया है? निश्चित ही आज शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य खो गया है। हम कमा सकें, अच्छा भोजन कर सकें, अच्छे घर में रह सकें, और अच्छे वस्त्र पहन सकें इसी को हमने शिक्षा का उद्देश्य मान लिया है। शिक्षा का संबंध आत्मोत्थान के लिए भी हो सकता है इस बात को हम भूल गए हैं।

आज की शिक्षा का उद्देश्य है रोटी, कपड़ा और मकान। आज प्रत्येक मां-बाप की यह सोच है कि यदि हमने अपने बच्चे को उसके पांव पर खड़ा कर दिया तो फिर शेष कुछ भी सिखाना बाकी नहीं रहा। पर क्या इतने से ही शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है?

परीक्षा का तनाव

मैं यह नहीं कहता हूं कि धन का जीवन में उपयोग नहीं है। धन उपयोगी है। उसके बिना व्यक्ति की दैहिक आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हो पाती हैं। लेकिन क्या इतने से ही हमारी शिक्षा पूर्ण हो जाती है? अगर हम आज की शिक्षा को देखें तो हम पाते हैं कि यहीं पर हमारी शिक्षा पूर्ण हो जाती है। क्योंकि सभी विद्यार्थियों का एक ही लक्ष्य होता है कि अच्छे-से-अच्छे अंक प्राप्त करके परीक्षा उत्तीर्ण करना। इसलिए आठ महीने कोई पढ़े या न पढ़े, अन्तिम दो महीने जमकर पढ़ाई की जाती है, क्योंकि परीक्षा आने वाली है। जब परीक्षा निकट होती है तब बच्चे अधिक-से-अधिक पढ़ाई करते हैं। परीक्षा का भय बच्चों को पढ़ने के लिए विवश करता है। मन तो नहीं होता है पढ़ने के लिए पर परीक्षा के कारण पढ़ना पड़ता है।

आज पढ़ाई विद्यार्थी के लिए एक बोझ बन गई है। तनाव

का कारण बन गई है। हरेक विद्यार्थी टेंशन में है। इसीलिए जब परीक्षा समाप्त होती है तो विद्यार्थी अपने को रिलेक्स अनुभव करते हैं। शान्त अनुभव करते हैं। परीक्षा के समय विद्यार्थी घोर अशांति में जीते हैं। कुछ तो ठीक से खा और सो नहीं सकते हैं। कई नींद में बड़बडाने लगते हैं। क्योंकि इतना तनाव उनके भीतर भर जाता है। कई विद्यार्थी गोली लेकर

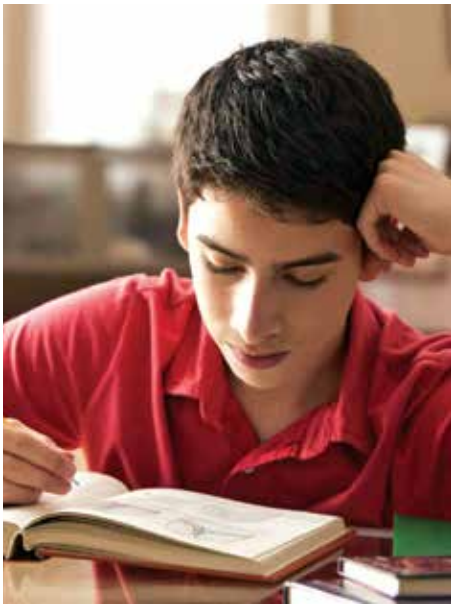

के परीक्षा देने जाते हैं। मां-बाप बेटे को स्कूल छोड़ने जाते हैं कि कहीं उनके बेटे को टेंशन न आ जाए। यह ऐसे है जैसे हस्पताल में ऑप्रेशन कराने जा रहें हों, कि न जाने बच करके आएगा कि नहीं आएगा। देखा आपने, जब Tenth के एग्जाम होते हैं तो विद्यार्थी के माता-पिता भी टेंशन में आ जाते हैं। कहते हैं, बेटे! सम्भल के जाना। हम तेरे साथ में हैं। हम बाहर ही खड़े हैं। अच्छी तरह एग्जाम देना...।

बच्चों से ज्यादा टेंशन तो मां-बाप को होता है।

एक मां ने कहा, महाराज! मैं प्रवचन में नहीं आ सकती हूं। मैंने पूछा, क्यों? उसने कहा, मेरे बच्चे के एग्जाम हैं न, इसलिए। मैंने पूछा, क्या बोर्ड के एग्जाम हैं? उसने कहा, नहीं पांचवीं कक्षा के एग्जाम हैं। पर एग्जाम तो एग्जाम ही हैं न।

जितना तनाव बच्चे को है उतना ही तनाव बच्चे के मां-बाप

को भी है। अगर एजुकेशन तनाव को ही बढ़ाने के लिए है तो वह एजुकेशन किस काम की है? अगर आप विद्या से शांत और आनंदित मनुष्य को पैदा नहीं कर सकते तो उस विद्या का क्या फायदा होगा?

वस्तुतः आज हमारे भारतवर्ष में जो विद्या है, जो एजुकेशन है वह मूलतः हमारी है ही नहीं। उसको हमने Import किया है अंग्रेजों से। अंग्रेज तो चले गए लेकिन अपनी किताबें और अपने कपड़े छोड़ गए। आज हमारे कपड़े भी हमारे कहाँ हैं? यह पेंट आपकी अपनी थोड़े ही है! यह अंग्रेज छोड़कर के गए हैं। हिंदुस्तान की तो पोशाक थी धोती और कुर्ता। यह शर्ट हमारी थोड़े ही है! यह तो अंग्रेज छोड़ के गए हैं। टाई हम थोड़े ही पहनते थे! इसे अंग्रेज छोड़ के गए हैं। ऐसे ही आप जो सिलेबस पढ़ते हैं वह भी अंग्रेजों का छोड़ा हुआ है। शिक्षा और सिलेबस तो क्या, भारत का संविधान भी भारत का कहाँ है, वह भी हमने अंग्रेजों से ग्रहण कर लिया है। आजादी केवल नाम की है। आज भी हम वहीं जी रहे हैं।

आज हम कैसे शुरुआत करें। एक ही दिन में हम पूरी शिक्षा-प्रणाली को बदल तो नहीं सकते हैं। शिक्षा तो वही रहेगी। वह तो जब सारा समाज, सारा देश बदलेगा, तब बदलेगी। आज तो हमारे पास अपने बच्चों को प्रचलित विद्यालयों में भेजने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। लेकिन एक कार्य हम अवश्य कर सकते हैं। बच्चे विद्यालय में छह घंटे रहते हैं और शेष समय घर में रहते हैं। उस समय हम कुछ कर सकते हैं। We can do something. हम क्या कर सकते हैं? हम क्या सिखा सकते हैं?

सच्ची शिक्षा

एक बहुत पुरानी कहानी है। हमारा भारतवर्ष बहुत सुंदर है। यहां पर जो भी संदेश दिया गया है वह कहानी के माध्यम से दिया

गया है। कहानी का मलतब होता है जो झूठ भी है और जो सच भी है। झूठ इसलिए है कि वैसा हुआ या नहीं हुआ किसको पता? और सच इसलिए है कि उसका इंगित सच की ओर है।

तो कहानी क्या कहती है? कहानी कहती है कि एक राजा के तीन पुत्र थे। राजा जब वृद्ध हो गया तो वह सोचने लगा कि मुझे अपना उत्तराधिकार किस पुत्र को देना चाहिए। जैसा कि प्रत्येक कहानी में होता है, उसने अपने तीनों बेटों की परीक्षा ली। उसने अपने तीनों बेटों को एक-एक रुपया दिया और कहा कि उन्हें इस धन से अपने कमरों को भरना है।

पिता का आदेश सुनकर तीनों राजकुमार अपने-अपने कमरों में चले गए। तीनों के पास समान धन था और उन्हें समान ही कार्य करना था। समान धन था और समान कार्य था, परन्तु बुद्धि अपनी-अपनी थी। बड़े राजकुमार ने सोचा, मेरे पिता निश्चित ही सठिया गए हैं। भला एक रुपए में भी कहीं इतने बड़े कमरे को भरा जा सकता है? उसके दिमाग में ऊहा-पोह चलता रहा। पिता का आदेश था। आदेश का पालन अनिवार्य था। पर उसे कुछ सूझता न था। तभी उसकी दृष्टि जमादार पर पड़ी जो नगर का कूड़ा-कचरा एक छकड़े में डालकर बाहर फैंकने के लिए ले जा रहा था। राजकुमार को युक्ति सूझ गई। उसने जमादार को अपने पास बुलाया और कहा, तुम आज नगर से जितना भी कचरा निकालो वह सब मेरे कमरे में डाल दो। इसके बदले में मैं तुम्हें एक रुपया दूंगा। जमादार ने राजकुमार के आदेश का पालन कर दिया और उसका कमरा कचरे से भर दिया।

मंझले राजकुमार को भी कोई युक्ति न सूझी। बहुत सोच-विचार करने के बाद उसने सोचा एक रुपए में सूखा घास ही इतनी मात्रा में खरीदा जा सकता है कि जिससे कमरा भर सके। ऐसा सोचकर उसने एक सेवक को एक रुपया देकर अपने कमरे को सूखे घास से भरवा दिया।

सबसे छोटे राजकुमार को भी अपना कक्ष भरना था। वह चिंतन करने लगा कि पिता ने एक रुपए में कमरे को भरने का आदेश दिया है तो अवश्य ही कोई ऐसी वस्तु होगी जिससे कमरा भरा जा सकता है। उसने गहन चिंतन किया और चिंतन से उसे उपाय सूझ गया। वह बाजार में गया। उसने एक दीपक, एक अगरबत्ती तथा एक सारंगी खरीद ली। ये तीनों ही वस्तुएं उसे एक रुपए में मिल गईं। वह अपने कक्ष में आया। उसने कक्ष में दीपक जला दिया और उसका पूरा कक्ष प्रकाश से भर गया। उसने अगरबत्ती को जला दिया और पूरा कक्ष सुगंध से भर गया। फिर वह कमरे में बैठकर सारंगी बजाने लगा और उसका पूरा कक्ष संगीत से पूर्ण बन गया।

संध्या में निर्धारित समय पर राजा आया। बड़े राजकुमार के कक्ष की ओर गया। दूर से ही दुर्गंध आ रही थी। राजा को सच्चाई जानने में देर न लगी। उसने दुखी होकर बड़े राजकुमार को डांट दिया। तदनन्तर वह मंझले राजकुमार के कक्ष में गया। उसका यथार्थ भी राजा ने जान

लिया। अपने दोनों पुत्रें की बुद्धि पर उसे बड़ा क्रोध आया। अन्त में वह छोटे पुत्र के कक्ष की ओर गया। कक्ष में प्रवेश करते ही उसकी आंखें भर गईं प्रकाश से, क्योंकि कमरा भरा हुआ था प्रकाश से। उसकी नासिका भर गई सुगंध से, क्योंकि कमरा सुगंध से भरा हुआ था, और उसके कान भर गए संगीत से, क्योंकि राजकुमार वहां बैठकर सारंगी बजा रहा था। राजा प्रसन्नता से झूम उठा। उसने छोटे राजकुमार को गले से लगा लिया और उसे युवराज घोषित कर दिया।

स्मरण रखें, सम्यक् शिक्षा वह है जो हमें प्रेम के प्रकाश से भर दे, सत्य की सुगंध से भर दे और आनंद के संगीत से भर दे। जो शिक्षा हमें प्रतिस्पर्धा से भर देती है, असत्य से भर देती है, तनाव और उन्माद से भर देती है वह शिक्षा सम्यक् शिक्षा नहीं हो सकती है। उसे शिक्षा नहीं कहा जा सकता है।

शिक्षा : आनंदपूर्ण जीवन की विधि

शिक्षा तो वह है जो आपको सहज बना देती है, आनंदमय बना देती है। प्रत्यके परिस्थिति को आप आनंद पूर्ण ढंग से जी सकें जो यह सिखाती है, वह है शिक्षा।

आनंद आप किसे कहेंगे? किसे कहना चाहिए आनंद? आप पंखे के नीचे आराम से बैठे हो, भरपेट बढ़िया भोजन किया हुआ है, सब सुविधाएं हैं, ऐसे में आप मुस्करा रहे हो, क्या इसे ही आनंद नहीं कहा जाता है? क्या आप इसे ही आनंद नहीं मानते हैं? पर यह आनंद नहीं है। यह आनंद आपके भीतर से प्रगट नहीं हुआ है। आनंद कुछ और बात है। वह आपके भीतर से प्रगट होता है। बाह्य प्रभावों से वह प्रभावित नहीं होता है।

आनंद क्या है?.... पंखा बंद हो गया है। पास में आपके मित्रगण अर्थात् मच्छर भिनभिना रहे हैं, वे आपसे प्यार कर रहे हैं, आपके रक्त को पी रहे हैं, गर्मी का मौसम है, पसीना टपक रहा है, धूल और

धुआं फैल रहा है, ऐसे में भी आप मुस्करा रहे हैं तो उसका नाम आनंद है।

यह है पहली शिक्षा। यह शिक्षा कैसे दी जाए? इसे समझने के लिए हम राम के जीवन में जाएं, कृष्ण के जीवन में जाएं। राम अकस्मात् ही राम नहीं बन गए और कृष्ण अकस्मात् ही कृष्ण नहीं बन गए। उनके भीतर जो संस्कार थे, उन संस्कारों के कारण राम राम बन पाए और कृष्ण कृष्ण बन पाए। वे राजकुल में पैदा हुए। जब उन्होंने शिक्षा के योग्य आयु में प्रवेश किया तो उन्हें गुरु के पास भेजा गया। गुरु ने उन्हें सुसंस्कारित किया। गुरु ने उन्हें एक राजकुमार बनाकर अपने पास नहीं रखा, उन्हे एक शिष्य बनाकर अपने पास रखा। गुरु उनसे साधारण से साधारण कार्य भी करवाते थे। राजकुमार केवल राज करना ही न जाने, राजकुमार को यह भी आना चाहिए कि एक लकड़हारे का जीवन क्या और कैसा होता है। इसलिए गुरु उनसे लकड़ियां भी कटवाते थे। राजकुमार केवल यह ही न सीखे कि किस प्रकार से आज्ञा देना, राजकुमार यह भी सीखे कि कैसे आज्ञा का पालन करना है। गुरु उन्हें कठोर-से-कठोर शिक्षा देते पर साथ ही गुरु-माता उन्हें पूर्ण मातृत्व प्रदान करती। प्यार और कठोरता दोनों साथ-साथ चलते थे।

इसीलिए राम राम बन सके। न उन्हें सिंहासन मोहासक्त बना सका और न वनवास कांटा बनकर उन्हें पीड़ित बना सका। वे प्रत्येक स्थिति को जीना जान चुके थे। प्रतिक्षण आनंदित कैसे रहा जाए इस रहस्य-सूत्र को वे बचपन में ही आत्मसात् कर चुके थे।

आप भी अपने बच्चों को राम और कृष्ण के समान श्रेष्ठ व्यक्ति बना सकते हैं। जीवन को आनंदपूर्ण ढंग से कैसे जीया जाए यह शिक्षा आप अपने बच्चों को बचपन में ही सिखा सकते हैं। पर यह शिक्षा मौखिक रूप से नहीं सिखाई जा सकती है। यह शिक्षा आचरण के द्वारा ही सिखाई जा सकती है। बचपन से ही बच्चों को कठोर और कोमल आचरण की सीख देना आवश्यक है।

रजिस्टैंस पावर

परन्तु हमारी सोच भिन्न है। हम अपने बच्चों को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सुविधाएं देने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसा करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि कल जब उनका सामना असुविधाओं से होगा तो वे उन असुविधाओं को कैसे झेल पाएंगे। अधिकतम सुविधाएं देकर हम अपने बच्चों को पंगु बना देते हैं। मैं यह नहीं कहता कि बच्चों को असुविधाओं और कठिनाइयों में धकेल दिया जाए। पर सुविधाएं देते हुए उन्हें असुविधा के स्वाद से भी परिचित बनाइए! इससे उनके जीवन का सम्यक् विकास होगा। उनके भीतर रजिस्टैंस पावर (Resistance Power) का विकास होगा।

शायद आपको पता होगा कि भारत में बच्चे जितने जल्दी बीमार नहीं पड़ते, उतने जल्दी बच्चे अमेरिका में बीमार पड़ते हैं। क्योंकि अमेरीका के बच्चे की रजिस्टैंस पावर बहुत कम है और भारत के बच्चे की रजिस्टैंस पावर बहुत ज्यादा है। जिस अवस्था में आज भारत का बच्चा जी रहा है उस अवस्था में वहां अमेरिका के बच्चे को खड़ा कर दो तो वह शीघ्र ही बीमार पड़ जाएगा और उसे हॉस्पिटल ले जाना पड़ेगा। क्योंकि वह इतनी सुख-सुविधा में पला-बढ़ा है कि वह थोड़े-से कष्ट को भी सहन नहीं कर पाता है।

यह अध्ययन किया गया कि जैसे आज हमारे Family doctors होते हैं, वैसे ही अमेरीका में Family साइकेटरिस्ट होते

हैं। वहां अधिकतर परिवार के परिवार किसी-न-किसी मानसिक रोग से ग्रस्त हैं और उन्हे निरंतर मनो-चिकित्सक की आवश्कता पड़ती है। ऐसा आप भारत में सोच सकते हो? भारत में आज भी ऐसा नहीं है। क्योंकि भारत में आज भी जहां जीवन में 'हां' है वहां पर 'न' भी है।

विश्वसनीय हो 'हां' और 'न'

याद रखें, जब आप अपने बच्चे को जीवन में सिखाते हो तो जहां पर 'हां' कहना जरूरी है वहां पर 'हां' कहो और जहां पर 'न' कहना जरूरी है वहां पर 'न' कहो। आपकी 'हां' ओर 'न' में दम होना चाहिए। पर आपकी 'हां' और 'न' कैसी होती है?

जैसे एक छोटी-सी बच्ची आकर अपनी मां से कहे कि मम्मी! मुझे चॉकलेट खानी है। मम्मी कहेगी, नहीं रे, उससे दांत खराब होते हैं। बच्ची कहेगी, नहीं मुझे खानी है। मां कहेगी, नहीं खानी है। फिर वह बच्ची बहुत जिद्द करती है, चीखती है, चिल्लाती है, पांव पछाड़ती है, कूदती है। आखिर मां कहती है, जा खा ले .....!

अब क्या होगा पता है आपको? उस छोटी बच्ची को समझ में आ जाएगा कि जब-जब भी चॉकलेट चाहिए ऐसे रोना चाहिए। तो ही मां 'हाँ' कहती है। फिर वह आदत बचपन तक नहीं रहेगी, वह आदत बड़े होने के बाद भी रहेगी। आज वह मां के सामने रो रही है, कल वह किसी और के सामने रोएगी। आज वह चॉकलेट के लिए रो रही है, कल वह कहेगी, मुझे स्कूटर लाकर दो। वैसा नहीं होगा तो वह रोने लगेगी, पांव पछाड़ने लगेगी, चीखने लगेगी। कल वह अपने पति के सामने भी वैसा ही करेगी।

यह मैं आपको उदाहरण दे रहा हूं। यह केवल एक लड़की की बात नहीं है, लड़का भी ऐसा कर सकता है। और यह आदत किसने लगाई? उसकी मां ने। अगर उस समय उसकी मां ने कहा होता, मेरी

'न' का मलतब न होता है और मेरी 'हां' का मतलब हां होता है तो बच्ची के स्वभाव का सम्यक् विकास होता।

वस्तुतः होता यह है कि जब हम हां कहते हैं तो हमें पता होता है कि कहीं-न-कहीं हमारे 'हां' के पीछे 'न' है। और जब हम 'न' कहते हैं तो 'न' का मतलब क्या? साठ से अस्सी प्रतिशत 'न' है और बीस प्रतिशत 'हां' है। हमारा मन खण्ड-खण्ड है। और इसी कारण बच्चे सच में समझ नहीं पाते हैं कि मां-बाप उनसे चाहते क्या हैं। क्योंकि 'हां' 'न' में भी बदल सकती है और 'न' 'हां' में भी बदल सकती है।

सर्वप्रथम जरूरी बात यह है कि जब आप 'हां' कहो तो 'हां' ही कहो और 'न' कहो तो 'न' ही कहो। और बच्चों को थोड़ा दुःख सहन करने दो। जरूरी नहीं है कि वह प्रतिदिन जूते पहनकर ही खेलने जाए, कभी उसे जूते को निकालकर के भी खेलना सिखाओ। कभी जूते के बिना चलना पड़ेगा तो वह चल सके। उसको यह शिक्षा देनी भी जरूरी है। जरूरी नहीं है कि उसे अच्छे वस्त्र पहनना ही सिखाओ, फटे-पुराने वस्त्र में रहना भी उसे सिखाओ।

पूना में एक बहुत अच्छे प्रोफेसर थे। वे इंजीनियरिंग की क्लास में अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। वे सिखाते थे ..... वे कहते थे अपने विद्यार्थियों को कि मैं तुम्हें आज सुबह से शाम तक का समय देता हूं, अपनी पहचान बताए बिना शाम तक तुम्हें सौ रुपए कमाकर लाने हैं। तो ही मैं तुम्हें एग्जाम में पास करूंगा।

उनके विद्यार्थी कोशिश करते। भिन्न-भिन्न तरीकों से कमाने की कोशिश करते। कुछ सफल भी होते। कुछ असफल भी होते। कुछ कहते कि यह हमसे तो नहीं हो सकेगा। फिर वे प्रोफेसर कहते कि फिर तुम्हारा इंजीनियर बनना किस काम का? तुम्हें फेल कर देना ही अच्छा है।

बच्चे को जहां आप 'हां' कहना सिखा रहे हो वहां आप 'न' कहना भी सिखाओ। जरा दुख की अनुभूति लेना सिखाओ उसे।

मुझे याद है एक बार की बात। एक छोटा-सा बच्चा बहुत रो रहा था। उसे भूख लगी थी। उसकी दादी मां से मैंने कहा, बच्चा भूखा है और रो रहा है, उसे दूधा पिला दो। उसकी दादी मां ने कहा, नहीं-नहीं, रोने दो, उसे आदत पड़नी चाहिए कि रोने के बाद भी कभी दूध मिलने में देरी हो सकती है। क्योंकि यदि यह आदत पड़ गई कि जैसे ही रोता है वैसे ही चीज मिलती है तो आगे उसका जीवन बिगड़ जाएगा।

नार्वे अथवा अमेरीका में पैदा हुए व्यक्ति को आज जितना जल्दी डिप्रैशन आता है उतना जल्दी डिप्रैशन भारत में पैदा हुए व्यक्ति को नहीं आता है। इसका कारण क्या है? कारण स्पष्ट है कि भारत में जन्मे व्यक्ति को अमेरीका में जन्मे व्यक्ति की तुलना में अधिक दुख और कष्ट में जीने की आदत है। भारत में एक व्यक्ति रास्ते पर सोता हुआ भी मुस्करा सकता है।

क्यों? क्योंकि रास्ते पर सो जाना उसने बचपन से सीख लिया है। रास्ते के पत्थर को वह तकिया बना लेता है और उस पत्थर पर सिर रखकर वह उतने ही आराम से सो जाता है जितने आराम से आप एयर-कंडीशनर रूम में सोते हैं। एक समृद्ध व्यक्ति के लिए जो बातें कष्टदायक सिद्ध हो जाती हैं उसके लिए वही बातें उसके जीवन का रूटीन हैं।

जीवन में यह प्रथम शिक्षा है, दुख से आनंदपूर्वक गुजरने की शिक्षा, जहां-जहां आपको रोना आए वहां-वहां मुस्कुराने की शिक्षा। यह पहली शिक्षा बच्चे को देना शुरू करें। और बचपन में यह कला सभी बच्चों के पास होती है। बचपन में सभी बच्चे मुस्कुराना जानते हैं। लेकिन धीरे-धीरे हम उसकी मुस्कान को दबा देते हैं। उसे हम सीरियस होना सिखाते हैं। सिखाना कुछ और चाहिए। सिखाना चाहिए बी सिनसियर डोंट बी सीरियस। सिनसियर होना जरूरी है। सिरियस होना जरूरी नहीं है।

हम बच्चों को मुस्कान सिखाएं। सिखाएं कि वे जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में कैसे मुस्कुरा सकें। और यह मुस्कान केवल ऊपरी न हो, भीतर से आनी चाहिए। भीतर से कब मुस्कान आएगी?

ब्रह्म–उपदेशम्

हमारे भारत में यह प्रथा थी कि जब बच्चा छह वर्ष का होता था तो उसको गुरुकुल में भेजा जाता था। वहां पर गुरु उसको जो पहली शिक्षा देते थे उस शिक्षा का नाम होता था, ब्रह्म-उपदेशम्। सबसे पहली शिक्षा बच्चे को दी जाती थी ब्रह्म का उपदेश। ब्रह्म अर्थात् The

purity of heart and soul. अपने भीतर की शुद्धता। अपने मन को शांत और शुद्ध कैसे बनाना उसकी शिक्षा पहले दी जाती थी। बाद में उसको भाषा, गणित, विज्ञान, सब बाद में सिखाया जाता था। क्योंकि भारत ने यह समझा कि अगर मन को शांत और शुद्ध रखना नहीं आता है तो कितना भी गणित, विज्ञान और भाषा सीख लो उसका कोई उपयोग नहीं रहेगा।

बड़े-बड़े समृद्ध लोगों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के डायरेक्टर्स के जीवनों पर जरा चिंतन कीजिए! वे दिन भर कंपनी के काम करते हैं और शाम को थक जाते हैं तो क्लब में जाते हैं। वहां Drinks लेते हैं, ताश खेलते हैं, मनोरंजन करते हैं। फिर घर जाकर सो जाते हैं। क्या है उनकी जिंदगी? इतनी बड़ी कम्पनी के डायरेक्टर बनकर अगर जीवन में केवल यही रह जाए तो उसका क्या अर्थ?

आज भारत में केरल शत-प्रतिशत साक्षर प्रान्त है। लेकिन सबसे अधिक आत्महत्या यदि कहीं होती हैं तो वह भी केरल ही है। सबसे अधिक आत्महत्याएं केरल में होती हैं। अगर इतनी अधिक पढ़ाई के बाद भी मनुष्य को आत्महत्या करनी पड़ती है तो उस पढ़ाई का क्या

अर्थ हुआ? इसमें पढ़ाई का दोष नहीं है। दोष है हमारी उस व्यवस्था का जिसने पढ़ाई को एकांगी बना दिया है। उससे दिमाग के एक ही हिस्से का विकास होता है। दूसरा हिस्सा अविकसित रह जाता है।

संभवत : आप जानते होंगे कि हमारे Brain के दो हिस्से होते हैं। एक है दायां हिस्सा और दूसरा है बायां हिस्सा। जो बायां हिस्सा है उसमें Logic है, गणित है, विज्ञान है। और जो दाहिना हिस्सा है उसमें, इंट्यूशन है, अतीन्द्रिय ज्ञान है, आर्ट है, कला है, शब्द है और भाषा है। आज की जो शिक्षा है वह केवल हमारे बाएं हिस्से को विकसित करती है, लॉजिक, बुद्धि, तर्क, वितर्क, सही गलत, अच्छा, बुरा। हम दाहिने हिस्से का विकास करना भूल गए। जब हम छोटे बच्चे थे तक हमारे मस्तिष्क के दोनों हिस्से काम करते थे। हमारी शिक्षाविधि बाएं पर जोर देती है तो दाहिना अविकसित रह जाता है। इसलिए ही हम अशांत रहते हैं।

दाहिने हिस्से का विकास होता है ध्यान के द्वारा, समाधि के द्वारा, शांति के द्वारा, अपने भीतर जाने की कला के द्वारा। और उसी को कहते हैं ब्रह्म-उपदेशम्।

ध्यान–समाधि–संतसान्निध्य

आप अपने बच्चे के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उसे अच्छे से अच्छे स्कूल में भेजें, फिर चाहे हजार रुपए फीस हो या दो हजार रुपए फीस हो। इस बात पर आप पूरा-पूरा ध्यान देते हो कि स्कूल अच्छे-से-अच्छा हो। पर इस बात पर आप ध्यान नहीं देते हैं कि यह एकांगी पढ़ाई है, दूसरे अंग का क्या होगा? आप बच्चे को एक अच्छे स्कूल में भेजते हो, उसके साथ ही यह भी जरूरी है कि उसे आप एक अच्छे संत के पास भी भेजें। आपका बच्चा जैसे प्रतिदिन पांच घंटे स्कूल में जाता है वैसे ही उसे प्रेरित करें कि वह प्रतिदिन आधा घंटा किसी संत के पास भी जाए। उसे ध्यान और समाधि में जाने के लिए

प्रेरित कीजिए। क्या ऐसी प्रेरणा आपने अपने बच्चों को कभी दी है?

अक्सर लोग कहते हैं, हमारे बच्चे आते ही नहीं हैं। लेकिन मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आपने अपने बच्चों से कभी गंभीरता से वैसी प्रेरणा दी? बच्चे स्कूल के टीचर के पास प्रतिदिन पांच घंटे बिता सकते हैं तो संत के पास आधा घंटा बिताने में मैं समझता हूं कि उन्हें परेशानी नहीं हो सकती है।

आपने स्वयं ध्यान, समाधि और संत सान्निध्य को महत्व नहीं दिया है। आप स्वयं यह मानते हैं कि ध्यान तो बुढ़ापे के लिए है, कि फालतू लोगों का विषय है। लेकिन ऐसा नहीं है। जीवन की शुरूआत का यह काम है। यह आधार है। जब भी बच्चे की पढ़ाई शुरू हो, उसको यह सिखाओ कि कैसे मन की स्लेट को कोरा किया जाए।

विवेकानन्द से किसी ने पूछा था, कि आप एजुकेशन का मतलब क्या करते हैं। उन्होंने कहा एजुकेशन का मैं मतलब करता हूं, कि मुझे अपने मन की स्लेट पर जब जो लिखना जरूरी है वह लिखूंगा और जब स्लेट को कोरा करना जरूरी होगा तब मैं कोरा कर दूंगा। यह मेरे हाथ में होगा कि कब मैं क्या लिखूंगा और क्या मिटाऊंगा।

आज हमारे हाथ में यह रहा नहीं है कि हम मन की स्लेट पर क्या लिखें और क्या मिटाएं। होता तो यह है कि हम जो याद रखना चाहते हैं वह भूल जाते हैं और जो भूलना चाहते हैं वह बार-बार याद आता है। आप किसी सबक को याद करने बैठते हो पर बार-बार दोहराकर भी उसे भूल जाते हो। और जिन बातों को आप भुलाना चाहते हैं वे बातें पुनः पुनः आपकी

स्मृति में उभरती रहती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हमारे पास वह कला नहीं है जिसके द्वारा हम अपने मन के स्वामी बन सकें। न हम मन पर किसी बात को अंकित करना जानते हैं और न ही मन पर अंकित बात को पोंछना जानते हैं। यह जान लेना ही सबसे पहली कला है और इसे आप अपने बच्चों को सिखा सकते हो। उसे किसी अच्छे स्कूल में भेजते हो तो किसी सद्गुरु के चरणों में भी भेजो। भले ही बच्चों का मन नहीं है, फिर भी आप उसे सद्गुरु के पास लेकर जाइए। बचपन से ही उसे यह आदत डालिए। प्रतिदिन आधा घंटा उसे सद्गुरू के पास लेकर जाइए। आप स्वयं भी मौन और शांत बनकर बैठें तथा उसे भी मौन और शांत बनकर बैठना सिखाएं। आप कहो कि मेरे पास कहाँ टाइम है, तो बच्चा भी वही कहेगा। पहले आपको स्वयं बैठना पड़ेगा। यह पहली शिक्षा है। मूल आधार है।

प्रेम की सुगंध

दूसरी शिक्षा है प्रेम की सुगंध। आज हमारे जीवन में अगर कहीं कोई कमी हे तो वह है प्यार की कमी। पहले एक जमाना था जब सारा परिवार एक साथ रहता था। एक ही जगह सब लोग बैठते थे। परस्पर बातचीत होती थी। दिन भर में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ सब परस्पर पूछते थे। आपस में हंसी-मजाक होती थी। फिर सब मिल-जुल करके सो जाते थे।

लेकिन आज यह व्यवस्था समाप्त हो गई है। बेटा आता है, अपना खाना खाता है और अपने रूम में चला जाता है। पिता आता है, अपना खाना खाता है और अपने रूम में चला जाता है। बेटी आती है, अपना खाना खाती है और अपने रूम में चली जाती है। सबके अपने-अपने रूम हो गए। परिवार एक होते हुए भी अलग-अलग हो गया। परस्पर मिलने का समय ही नहीं रह गया है। सुबह पिता चला जाता है अपने काम पर और बेटा चला जाता

है अपने काम पर। पिता अपने काम में व्यस्त है। बेटा अपने काम में व्यस्त है। माता अपने काम में व्यस्त है और बेटी अपने काम में व्यस्त है। सब व्यस्त हैं। इसी व्यस्तता में पारस्परिक प्रेम कहीं खो जाता है।

दूरी बढ़ती जा रही है। पिता का अपना एक अलग संसार है। बेटे का अपना एक अलग संसार है। मां अपने संसार में कैद है और बेटी अपने संसार मे कैद है। परिवार एक है। पर परिवार की जो एकात्मकता है वह कहीं खो गई है। धागा खो गया है। मोती बिखर गए हैं।

क्या आप अपने बारे में अपने बेटे को सब कुछ सच-सच बता सकते हो? और क्या आप विश्वासपूर्वक कह सकते हो कि आपका बेटा दिल खोलकर आपको सब कुछ बता सकता है? आप अपने हृदय पर हाथ रखकर अपने आप से इस प्रश्न का उत्तर मांगिए! क्या ऐसा है? क्या आपकी बेटी अपनी मां से सब कुछ बता सकती है। क्या मां अपनी बेटी को सब कुछ बता सकती है। शायद नहीं बता सकती है। कहीं-न-कहीं मां भी छिपाती है और बेटी भी छिपाती है।

कई लड़के-लड़कियां हमारे पास आते हैं। कहते हैं, देखिए गुरु जी! हम आपको तो सब बता सकते हैं, पर अपनी मम्मी को नहीं बता सकते। उनकी बात सुनकर सच में मुझे दुख होता है।

मोहनदास/महात्मा गांधी

आपके बच्चे डरते हैं कि यदि वे आपके समक्ष सब सच-सच कहेंगे तो आप उनके बारे में क्या सोचेंगे। और सच में यह बात सही है। यहां पर आप याद करना महात्मा गांधी जी के पिता को। महात्मा गांधी वैसे ही इतने महान नहीं बन गए। उनकी महानता के पीछे राज है उनके पिता जी की शिक्षा का।

महात्मा गांधी के जीवन का एक प्रसंग है। जब वे छोटे थे तो एक बार रात में वे अपने पिता के पैर दबा रहे थे। पिता के पैर पर आंसू की गर्म-गर्म बूंदें गिरीं। पिता ने पूछा, मोहन बेटे! क्यों रो रहे हो?

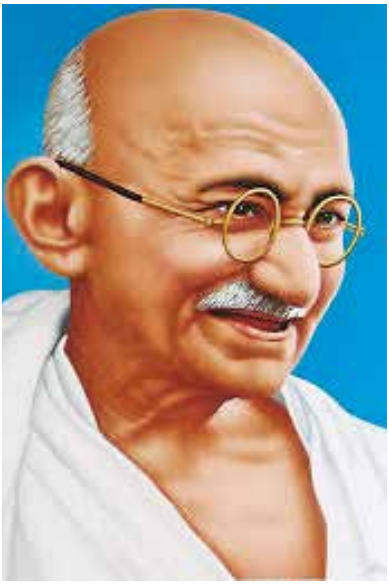

गांधी जी ने अपने पिता को सब बातें बता दीं कि मैंने चोरी की, मैंने मांसाहार भी किया, मैंने छिप-छिपकर बीड़ी भी पी, मैंने यह भी किया, मैंने वह भी किया। सब कह दिया।

..... ऐसे में एक सामान्य पिता होता तो क्या करता? वह क्रोधित हो जाता, अपने पुत्र को डांटता, आंखें निकाल कर दिखाता। और बच्चा सहम जाता। फिर वह कोई-न-कोई कारण गिनाता कि यह सब मैंने खुशी से नहीं किया, ऐसा मुझे करना पड़ा। वह कारण बताता।

स्मरण रखें, जब भी आप अपनी बुराई को किसी कारण के कवर मे छिपाते हो तो सत्य का गला घोंट देते हो। पर गांधी जी ने कोई कारण नहीं दिया। उनके पिता भी एक उच्चकोटि के समझदार पुरुष रहे होंगे जिन्होंने अपने पुत्र के अकल्प्य कृत्यों को सुनकर भी पुत्र पर क्रोध नहीं किया। उन्होंने पूर्ण शांत-चित्त से अपने पुत्र की बातों को सुना।

सब बातें ध्यान से सुन लेने के पश्चात् पिता ने कहा, बेटे! क्या से सब बातें तुम भविष्य में भी करना चाहते हो? गांधी जी ने कहा, नहीं पिता जी! मैं आगे से ऐसी बातें नहीं करना चाहता।

पिता ने कहा, ठीक है, अब तक तुमने जो-जो किया उसे भूल जाओ। समझो कि तुमने दुःस्वप्न देखा था, और अब वह दुःस्वप्न विलीन हो गया है। Let us start again. चलिए, अब पुनः एक नए जीवन की शुरूआत करते हैं। कल तुम्हारा जन्म-दिन है। तुमने चोरी की थी न, जिन हाथों से चोरी की थी उन्हीं हाथों से आज दान दो, तुमने जिन हाथों से बीड़ी को पकड़ा था, आज उन्हीं हाथों से अनाथ बच्चों को मिठाई खिलाओ, जिस जबान से तुमने झूठ बोला था आज उसी जबान से परमात्मा की प्रार्थना करो ....।

महात्मा गांधी ने लिखा है, उस दिन मेरे पिता ने मेरा कान पकड़कर मुझे दो चांटे मारे होते तो मैं चोर ही बन जाता, महात्मा कभी न बन पाता। क्योंकि जब वे मुझे मारते तो मेरे मन के भीतर एक हीन-भावना आ जाती कि मैं चोर हूं, मैं अपराधी हूं, मैं मांसाहारी हूं, मैं बुरा लड़का हूं, I am a bad boy और मनोविज्ञान कहता है, जिस बारे में तुम्हारे भीतर गिल्ट है वह चीज तुम बार-बार करते हो।

महात्मा गांधी के पिता ने पहले तो उसके भीतर से हीन भावना को निकाल दिया। फिर उसे सुसंस्कारों का अमृत-पान कराया। उसी के परिणामस्वरूप मोहन में मोहनदास कर्मचन्द गांधी का जन्म हुआ। वे विश्व में महात्मा के रूप में पूज्य बने।

हम/आप अक्सर कहते हैं कि सच बोलो। पर क्या आपके पास सच को सुनने की क्षमता है? पहले विचार करो कि क्या आप सत्य को सुन पाओगे?

माता मदनकौर पारख के जीवन का एक प्रसंग है। यह एक सत्य घटना है। किताबी कहानी नहीं है। उनकी शादी हुई। वे पति के घर में आईं। पहली-पहली रात है। जैसे कि प्रत्येक पत्नी के मन में प्रश्न होते हैं वैसे ही उसके मन में भी प्रश्न थे। उसने अपने पति से कहा, देखिए स्वामी! आज से हम एक नई जिंदगी शुरू कर रहे

हैं, आज से हम जीवन साथी हैं। आप जीवन में जो-जो करोगे सब सच-सच मुझे बताओगे। प्रत्येक पत्नी की यही आकांक्षा होती है कि उसका पति उसे सब कुछ सच-सच बताए। पति को भी पत्नी से यही अपेक्षा रहती है।

मदनकौर ने पति से यह बात कही। जानते हैं आप कि उसके पति ने क्या कहा? पति ने कहा, मैं तो सच-सच बताऊंगा, लेकिन उस सच को पचा सकने की शक्ति तुममें है क्या? कल आकर के मैंने तुमको सच-सच बता दिया कि मैंने ये-ये किया है, तो क्या तुम्हारे और मेरे संबंध वैसे ही रह पाएंगे जो सुनने के पहले थे? अथवा संबंधों के बीच में दीवार आ जाएगी कि तुमने ऐसा किया?

हम कहते तो हैं कि सच बोलो, सच बोलो। लेकिन सच को सुनने की ताकत कहाँ है हम में? सच को पचाने की ताकत कहाँ है हममें?

तो माता और पिता बनने के लिए बहुत जरूरी है कि सच को पचाने की ताकत रखें। अगर आप में सच को पचाने की ताकत नहीं है तो फिर यह तैयारी रखें कि झूठ आ ही जाएगा आपके संबंधों के बीच में।

Love is a state of mind

तो दूसरा सूत्र है, प्रेम की सुगंध। प्रेम का मतलब यह नहीं है कि माता से प्रेम करो, पिता से प्रेम करो, कुटुम्बी जनों से प्रेम करो, पड़ोसी से प्रेम करो। प्रेम का मतलब कोई संबंध नहीं है। Love is not a relationship, but a state of mind. प्रेम कोई संबंध नहीं है, वह तो तुम्हारे चैतन्य की एक अवस्था है। यदि वह होगा तो सबके साथ होगा, अन्यथा किसी के साथ नहीं होगा। प्रेम कभी एक के साथ ज्यादा और दूसरों के साथ कम नहीं हो सकता है। जो ज्यादा और कम होता है वह मोह है। वह प्रेम नहीं है। वह Attachment है,

प्यार नहीं है। जो एक से है दूसरे से नहीं है, वह मोह है, वह प्रेम नहीं है। प्रेम तो वह है जो सबके साथ है, समान रूप से है।

आप यह तो सिखाते हो कि देख बेटे अपने पिता के पैरों को छूना चाहिए, लेकिन कभी यह नहीं सिखाते कि घर में बूढ़ा नौकर है उसे भी प्रणाम करना चाहिए। आज वह ड्राइवर है पर तुमसे बड़ा है, उसको भी प्रणाम करना चाहिए। कभी आपने सिखाया? कभी याद आया आपको यह?

निःसीम प्रेम

यह तो हुई इन्सान के संबंध में प्रेम की बात। पर प्रेम की सीमा यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती है। प्रेम तो निःसीम है। जब आपके भीतर प्रेम प्रगट होता है तो आपके जीवन का समस्त गुणधर्म बदल जाता है। फिर आपका प्रेम केवल इन्सान तक सीमित नहीं रहेगा, वह निर्जीव वस्तुओं पर भी प्रगट होगा।

आपके बच्चे स्कूल से आते हैं और बस्ते को फैंक देते हैं, जूतों को उतारकर फैंक देते हैं। उस समय आप यह भूल जाते हैं कि बच्चे ने बस्ते को जोर से फैंका। जो आज बस्ते को जोर से फैंक सकता है, कल वह किसी इंसान को भी जोर से फैंक सकता है। फिर यह सवाल बस्ते को फैंकने का नहीं है, सवाल फैंकने की वृत्ति का है।

तो प्यार की शिक्षा का मतलब केवल इंसान से प्यार नहीं वस्तुओं से भी प्यार करो। यह एक रूमाल है, या तो आप प्रेमपूर्वक रख सकते हो, या आप गुस्से से पटक सकते हो। जब आप इस रूमाल पर गुस्सा कर सकते हो तो रूमाल को आप प्यार से क्यों नहीं उठा सकते हो।

महात्मा की प्रेम–शिक्षा

एक विचारक था। वह एक बड़े महात्मा से मिलने के लिए गया। बड़ी दूर से गया। वे महात्मा रहते थे किसी पहाड़ी के ऊपर। महात्मा के निवास तक पहुंचते-पहुंचते वह विचारक थक गया था। यात्रा से परेशान बन गया था। महात्मा के कक्ष में प्रवेश करते हुए उसने जोर से द्वार को घसीटा और धड़ाम से उसे बंद कर दिया। फिर जूतों को एक और फैंककर वह महात्मा के निकट गया। महात्मा को प्रणाम करके वह बैठ गया और बोला, महात्मन्! मैं आपसे संवाद करने आया हूं। महात्मा ने कहा, भाई! संवाद तो तभी हो सकता है जब तुम प्रेम में हो। अभी तो विवाद ही हो सकता है, क्योंकि तुम प्रेम में नहीं हो।

विचारक ने कहा, महात्मन्! मेरी आपसे कोई दुश्मनी नहीं है। मैं प्रेम में ही हूं। आपके प्रति प्रेम और भक्ति से पूर्ण बनकर ही तो मैं आया हूं।

महात्मा के कहा, भाई! तुम भूल रहे हो। प्रेम केवल मुझसे नहीं तुम्हें उन जूतों के प्रति भी प्रेमपूर्ण होना होगा, उस द्वार के प्रति भी प्रेम से भरना होगा।

विचारक विचार में पड़ गया। उसने पूछा, द्वार और जूते के प्रति प्रेमपूर्ण होने से आप का क्या मतलब है? महात्मा ने कहा, जूते के पास जाओ और उससे क्षमा मांगो कि भविष्य में तुम उसे क्रोध से नहीं फैंकोगे। द्वार के पास जाओ और उससे क्षमा मांगो कि तुमने उसे क्रोध से धकेला।

विचारक ने पूछा, इससे होगा क्या? क्या जूते और दरवाजे मेरे प्रेम को समझ पाऐगे?

महात्मा ने कहा, तुम वैसा करो। जूता और दरवाजा तुम्हारी बात समझे ना समझे, तुम स्वयं अवश्य समझ जाओगे।

उस विचारक ने अपने संस्मरण में लिखा कि मुझमें महात्मा से संवाद का प्रलोभन था, उसके कारण मुझे उनका कहा करना पड़ा। मैं जूतों के पास गया। मैंने जूतों से क्षमा मांगी। द्वार से क्षमा मांगी। जब मैं वैसा कर रहा था तो मुझे लग रहा था कि मैं क्या पागलपन कर रहा हूं। पर वैसा करने के बाद एक अलौकिक शांति मेरे भीतर अवतरित हुई। मैं सहज-शांति और प्रेम से भर गया।

यह है प्रेम की शिक्षा। हम बच्चों को जीवन जीने का प्रेमपूर्ण अंदाज सिखाएं। आपका बच्चा एक किताब को फाड़ देता है तो आप उस पर नाराज होते हैं और कहते हैं कि जानते हो यह कितनी महंगी किताब है। तुमने कितना नुकसान कर दिया।

आप बच्चे को पुस्तक की कीमत बताते हैं। आपके समझाने से बच्चा यही समझता है कि पुस्तक को इसलिए नहीं फाड़ना क्योंकि वह इतने पैसे की है। बच्चा कल को जब पैसे कमाने लगेगा तो कहेगा कि अब मेरी जो मर्जी होगी मैं वही करूंगा।

बच्चे को समझाने का ढंग सकारात्मक बनाइए! उससे कहिए, बच्चे! क्या पुस्तक को फाड़ देना तुम्हारे व्यक्तित्व को शोभा देता है? क्या तुम्हें अच्छा लगेगा कोई तुम्हारा कमीज फाड़ दे? कोई तुम्हारी कमीज को फाड़ता है तो वह तुम्हें अच्छा नहीं लगता है फिर तुम किताब को फाड़ते हो तो क्या यह शोभनीय है? फाड़ने का भाव ही क्या अशुभ नहीं है? तुम इतने समझदार हो। क्या तुम्हें अपनी किताब से प्यार नहीं करना चाहिए।

ऐसे बच्चे में प्यार के दृष्टिकोण का विकास करो। लेकिन हम कहाँ प्यार करते हैं। हम तो बच्चों को बड़ा होने के बाद सुनाते हैं, तुम्हें पता है कि हमने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया था, कितने-कितने पापड़ बेले थे, और आज तुम्हें हमारी ओर देखने तक की फुरसत नहीं है। सीधा साफ अर्थ है कि हम अपने प्यार का बदला मांगते हैं। यह प्यार नहीं है। यह तो एक व्यापार हो गया।

हां, मां-बाप की सेवा आवश्यक है। लेकिन इसलिए नहीं कि उन्होंने पहले अपने बेटे की सेवा की। यह आदान-प्रदान का गणित नहीं है। इसलिए जरूरी है, क्योंकि प्यार और सेवा करने से आनंद का जन्म होता है। इसलिए जरूरी है, क्योंकि मां-बाप की सेवा करने से जीवन में विकास होता है। यही जीवन को जीने का सही ढंग है। जीवन को सुगंधित बनाने का, शांतिपूर्ण बनाने का सही ढंग है।

पहला है आनंद, दूसरा है प्रेम, तीसरा है ज्ञान।

दो प्रकार का ज्ञान

एक ज्ञान है जो पुस्तकों से आता है। दूसरा ज्ञान है जो आपके भीतर की शांति और समाधि से आता है। और जो भीतर का ज्ञान है वही आपको जीवन में कहीं पर पहुचाता है।

भगवान महावीर स्वामी ने अपने शिष्य इन्द्रभूति गौतम को कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ाए। उन्होंने उन्हें संक्षिप्त सूत्र दिए, वे भी उनके जिज्ञासा प्रस्तुत करने पर, और गौतम ज्ञानी बन गए।

गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा था, भंते! तत्त्व क्या है? भगवान् ने समाधान दिया, जो उत्पन्न होता है, गौतम ने पुनः पूछा, तत्त्व क्या है? भगवान् ने कहा, जो विनाश को प्राप्त होता है। गौतम ने फिर से

वही प्रश्न दोहराया, तत्त्व क्या है? भगवान् ने कहा, जो स्थिर रहता है।

जीवन में तीन ही बातें हैं, उत्पत्ति, विनाश और स्थिति। बनता है, बिगड़ता है और कुछ वैसे ही रहता है। इन तीन बातों को सुनकर ही गौतम को ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

ऐसा क्योंकर हुआ? ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि ज्ञान मनुष्य के भीतर ही आवृत है। जैसे ही आवरण हटता है ज्ञान प्रगट हो जाता है।

सम्यक् शिक्षा के तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। प्रथम सूत्र, हम अपने बच्चों को दुख में भी मुस्कुराना सिखाएं। दूसरा सूत्र, उनके जीवन में प्रेम भी हो। और तीसरा, उनमें हम ज्ञान का विकास करें। ज्ञान के लिए आप जहां बच्चे को स्कूल में भेजते हो, वहां आप बच्चे को ध्यान, समाधि और प्रार्थना की शिक्षा भी देना सीखो।

मां बच्चे की प्रथम गुरू होती है। उस पर बच्चे का सर्वाधिक दायित्व है। मां अपने दायित्व को समझे। वह एक गुरू का दायित्व निभाए। वह बच्चे को शिक्षित करे। पर उसके लिए जरूरी है कि मां के स्वयं के जीवन में गुरुता का विकास हो। मां स्वयं उन सिद्धांतों को आत्मसात् करे। इसीलिए मैं अक्सर कहा करता हूं कि मां होना एक तपश्चर्या है। एक साधना है।

स्वर्णिम वृद्धत्व के सोपान

वे लोग जीवन की दौड़ में पिछड़ जाते हैं जो मरने से पहले ही मर जाते हैं। मृत्यु तो एक ही बार घटती है। उसे जब घटना है तब वह घटेगी। परन्तु उसके घटने से पूर्व ही उसकी चिन्ता कैसी? उसकी चिन्ता में हाथ–पैर लटकाकर बैठ गए तो जीवन थम जाएगा। जीवन का थम जाना ही बुढ़ापा है। कुछ नया सीखना ही जीवन है। कुछ नया सीखने की उमंग ही यौवन है।

3

स्वर्णिम वृद्धत्व के सोपान

किसी कवि ने लिखा है -

कलियों के ज़िगर अपसुर्दा हैं,
कांटों की ज़बानें सूखी हैं।
हम मधुवन के धोखे में शायद,
जंगल के किनारे आ बैठे।।

व्यक्ति खोजने तो निकलता है जीवन में मधुवन, फूलों की सुगंध, लेकिन जीवन पूरा होते-होते उसे पता चलता है कि यह तो घनघोर जंगल है। खोजने तो निकला था हंसी, हाथों में आते हैं आंसू, खोजने तो निकला था सुगंध, हाथों में आती है बदबू।

ऐसा क्यों होता है? हम जो मुस्करा रहे हैं, क्या हमारी मुस्कुराहट सच में मुस्कुराहट ही है या

साथ में कुछ और भी है? हम स्वयं जरा भीतर देखें।

नीत्शे से किसी ने पूछा था कि भाई! तुम हर समय मुस्कुराते क्यों रहते हो? नीत्शे ने कहा, कहीं रोना न आ जाए इसलिए मैं मुस्कुराता रहता हूं।

शायद हमारे भीतर भी बहुत दर्द है, पीड़ा है जो हमने भीतर दबाकर रखी है। जीवन उसका नाम है जो सदा बहता रहे। इसलिए कहावत है, पानी तो बहता भला, रुक जाए तो कीचड़ बन जाए। इसी तरह जब तक जीवन बहता रहता है उसे हम जीवन कहते हैं, जब रुकने की शुरुआत होने लगे तो समझ लो मौत के आने की शुरुआत हो गई। और इसी को हम बुढ़ापा कहते हैं।

आज का विषय है, स्वर्णिम वृद्धत्व के सोपान। बुढ़ापे को हम सुनहरा कैसे बनाएं? शायद यह कहना ठीक होगा कि बुढ़ापा तो सुनहरा है ही, हम कैसे पहचानें कि वह सुनहरा है? क्योंकि होता यह है कि हमारा शरीर तो बूढ़ा हो जाता है पर हमारी इच्छाएं बूढ़ी नहीं होती हैं। इच्छाएं सदैव जवान बनी रहती हैं। इस कारण यह बुढ़ापा हमें लगता है कि कष्ट-दायक है। दुखी बनाने वाला है।

बुढ़ापे के लक्षण : शरीर की अकड़न

बुढ़ापे से आप क्या समझते हैं? बुढ़ापे का अर्थ यह नहीं है कि आप पचास या साठ वर्ष के हो गए और बूढ़े हो गए। ऐसा नहीं है। बीस वर्ष का युवक भी बूढ़ा हो सकता है और पचास वर्ष का व्यक्ति भी युवा हो सकता है। बुढ़ापा किसे कहते हैं, पहले तो हम यह समझें। वृद्धत्व का, बुढ़ापे का जो प्रथम लक्षण है, वह है शरीर के भीतर अकड़न और जकड़न का उतर आना, कि आपका शरीर अकड़ने लगे। आपके भीतर जो लचीलापन था वह आप खोने लगे, कि जिस लचीलेपन के साथ आप मुड़ सकते थे, घूम सकते थे, फिर सकते थे, अब वह लचीलापन खोने लगे आप। अब दिक्कत आती

है। तो शरीर में एक अकड़न आ गई। और शरीर में उतरने वाली अकड़न से भी खतरनाक है हमारे मन पर उतरने वाली अकड़न। मन की अकड़न का अर्थ है, अपनी मान्यताओं और धारणाओं के साथ अकड़कर खड़े हो जाना, कि वही सही है जो मैं मानता हूं और शेष गलत है।

बुढ़ापे का प्रथम लक्षण है, अकड़न का आ जाना। जीवन को स्वर्णिम बनाने के लिए सर्वप्रथम हमें सीखना होगा कि इस अकड़न से हम कैसे बचें।

मन की अकड़न

अकडन मतलब क्या? आपने अक्सर देखा होगा कि कुछ लोग होते हैं जो सहजता से झुक जाते हैं और कुछ लोग होते हैं जो सहजता से झुक नहीं पाते हैं। झुकने में उन्हें पीड़ा होती है। पीड़ा इस बात का लक्षण है कि आपके शरीर में अकड़न आ गई है। दूसरी है मन की अकड़न। कोई व्यक्ति होगा जिसे आप कोई नई बात सुनाओगे तो वह सुनकर के राजी होगा। और कोई व्यक्ति होगा जो आपकी नई बात को सुनने को राजी नहीं होगा। सुन भी लेगा तो उसे स्वीकार नहीं कर पाएगा। वह कुछ नया सीखने को राजी ही नहीं है। और जब अकड़न और ज्यादा बढ़ जाए तब व्यक्ति सुनने को भी राजी नहीं होता है। वह कहता है, जो मेरे अनुसार है मैं वही सुनूंगा और जो मेरे विचारों से मेल नहीं खाता है वह मैं सुनूंगा भी नहीं।

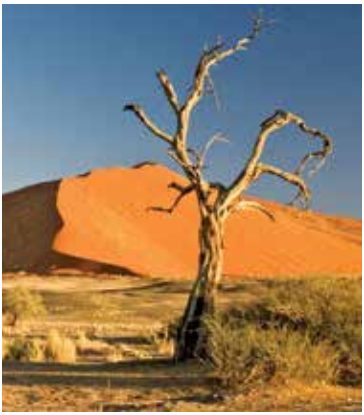

यह है मन की अकड़न।

सर्वप्रथम आप अपने भीतर छिपी हुई अकड़न को पहचानिए! आप यदि प्रामाणिकता से देखेंगे तो पाएंगे कि आप के भीतर कहीं न कहीं ऐसी अकड़न और जकड़न छिपी हुई होती है। हमने मन में सोच करके रखा है कि यह सही है और यह गलत है। हम धारणाओं में कैद हैं। पहले से ही हमने जो मान लिया है उससे हम मुक्त नहीं हो पाते हैं।

हमारे पास लोग आते हैं। कुछ लोग आते हैं और कहते हैं कि भगवान् महावीर ने तो ऐसा बताया है और आप ऐसा कह रहे हैं। देखिए वे क्या कहते हैं, भगवान् ने तो ऐसा बताया है और आप ऐसा बता रहे हैं। वे इतने Confidence से कहते हैं कि जैसे वे अभी-अभी महावीर से मिलकर आ रहे हैं। अब जरा पूछो कि तुमको क्या पता है कि महावीर ने ऐसा बताया है। वे कहते हैं, हमने ऐसा सुना है। किससे सुना है? किसी से। जो महावीर नहीं है। कोई और है। यह है मन की अकड़न।

धारणाओं का फोटोफ्रेम

जरा विचार कीजिए कि आपने अपने मन की धारणाएं किस आधार पर बनाई हैं। अगर किसी व्यक्ति को कहते हो कि यह अच्छा है, तो क्यों यह अच्छा है। और अगर कहते हो कि यह व्यक्ति ठीक नहीं है तो क्यों ठीक नहीं है। आप देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि जो फोटोग्राफ आपकी फोटो-फ्रेम में फिट हो जाए वह फोटोग्राफ बहुत सुंदर है। और जो उसमें फिट न हो वह ठीक नहीं है। हम यह नहीं सोचते कि मेरी फोटोफ्रेम ठीक नहीं है। हम कहते हैं कि फोटोग्राफ ठीक नहीं है। क्योंकि फोटोफ्रेम तो मेरी अपनी बनाई हुई है, वह गलत कैसे हो सकती है? यह है Prejudiced mind. अकड़न और जकड़न में फंसा हुआ मन। और करीब-करीब हर व्यक्ति के साथ ऐसा होता है।

बालक : एक जीवंत जीवन

जब हम बच्चे होते हैं तो मन बहुत ही तरल होता है। एकदम तरल। क्योंकि विचार बहुत कम होते हैं। जब बच्चे का जन्म होता है तो उसका मन एकदम कोरा होता है। उसके भीतर विचारों की ऊहापोह नहीं होती है। इसलिए उसे जो सिखाया जाता है वह उसे ग्रहण कर लेता है। हम सोच नहीं सकते कि बच्चा कुछ सीख सकता है। परंतु वह उस अवस्था में सर्वाधिक ग्रहणशील है। पंद्रह वर्ष की अवस्था तक बच्चे का मन तरल रहता है। फिर उसमें जटिलताएं प्रवेश करने लगती हैं। जब तक वह तरल रहता है तब तक वह सीखने को राजी होता है।

बच्चे को प्राकृतिक रूप से कुछ बातें बहुत प्रिय लगती हैं। जैसे कि उसे खेलना बहुत अच्छा लगता है। उससे भी अच्छा उसे लगता है, कुछ नया सीखना, Something new. उसे नवीनता प्रिय है। वह प्रतिपल नए को ग्रहण करने को उत्सुक रहता है। आप बच्चे को कोई खिलौना दीजिए, वह थोड़ी देर खेलेगा, फिर Out dated. और नया लाओ। फिर आप दूसरा खिलौना देंगे। उसे भी वह थोड़ी देर के बाद रिजेक्ट कर देगा। उसे पल-पल में कुछ नया चाहिए। वह सदैव कुछ नए में जीने को उत्सुक है। क्योंकि जीवन में एक गति है और बचपन में वह गति बहुत तीव्र होती है। बच्चा तीव्रता में जीता है। वह एक जीवंत और ज्वलंत जीवन जीता है। वह समग्रता में जीता है। वह आपको देखता भी है तो समग्रता में देखता है। वह आपको पूरा-का-पूरा ग्रहण कर लेता है। अपने भीतर भर लेता है। उसकी आंखें पूरी खुली हैं। उसकी आंखें बुझ नहीं गई हैं। क्योंकि जीवन खिला हुआ है अभी।

बुढ़ापा कब आता है? बुढ़ापा तब आता है जब जीवन बुझने की शुरुआत होती है। अर्थात् जब कुछ नया सीखने की वृत्ति कम होती चली जाती है। बुढ़ापे को स्वर्णिम बनाने का ..... जीवन को स्वर्णिम बनाने का सर्वप्रथम सूत्र यही है कि सदा कुछ नया सीखते रहो। जब आप रात में सोने के लिए जाओ तो देखो और चिंतन करो कि आज मैंने क्या कुछ नया सीखा, आज मैंने जीवन में किस नई बात को ग्रहण किया। क्या कुछ नया समझा।

आग्रह नहीं अनुग्रह

अक्सर लोग कहा करते हैं कि हमारे बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं, बहुत अनुभव है हमें। लेकिन यह तो कहने भर की बात है। अक्सर बाल ऐसे ही सफेद हो जाते हैं। अनुभव तो आते हैं और जाते हैं। लेकिन हम अनुभवों से सीखते कहाँ हैं? बचपन में आप झगड़ते थे, मेरी पेंसिल, मेरी कॉपी। बड़े होकर आप झगड़ते हो, मेरा घर, मेरा धन, मेरा यह, मेरा वह। और उससे भी आगे, मेरे विचार .....। मेरे विचार के अनुसार मेरा बेटा नहीं चलता। अर्थात् बेटा आज्ञाकारी नहीं है। मेरे विचार के अनुसार नहीं चलता मतलब बेटा आज्ञाकारी नहीं है। तो विश्व में सब बेटों को अनाज्ञाकारी ही बनना पड़ेगा अगर वे बेटे जिंदा हैं तो। अगर वे गोबरगणेश हैं तो आज्ञाकारी होंगे। क्योंकि उनके अपने कोई विचार ही नहीं हैं। They are not creative at all. अगर बेटा creative है, कुछ नई सोच रखता है तो पिता की सोच से उसकी सोच अलग होगी ही। क्योंकि वह नया जीवन है और इसलिए उसका नया ही जवाब होगा। जब पिता जी जीवन जी रहे थे तो जमाना अलग था, व्यापार अलग था, घर अलग था, परिस्थिति अलग थी। उस समय के जवाब भी अलग थे, क्योंकि प्रश्न भी अलग थे। आज जमाना बदल गया है। जीवन बदल गया है, प्रश्न बदल गए हैं, तो जवाब भी बदल जाएंगे। और बदलने जरूरी हैं।

जैसे आपके दादा जी का एक जमाना था। वे धोती और कमीज पहनते थे। आज अगर आप ऑफिस में धोती पहनकर जाओगे तो उपहास के पात्र बन जाओगे। क्योंकि जमाना बदल गया है। उसके अनुसार व्यक्ति को बदलना पड़ता है। मैं यह नहीं कहता हूं कि सब कुछ बदलना चाहिए। लेकिन आपको अपने बेटे को यह स्वतंत्रता देनी पड़ेगी कि वह अपनी सोच तथा जमाने के अनुसार जी सके।

हर पिता चाहता है कि उसका बेटा उसी के जैसा बने। उसी की सोच के अनुरूप वह चले। जैसा वह चाहे वैसा ही बेटा करे। उसका बेटा पूरा का पूरा उसी के सांचे में ढले। पर ऐसा कैसे हो सकता है? वह भी एक स्वतंत्र जीवन का स्वामी है। उसका भी एक व्यक्तित्व है। अपने आप में वह विरल है। अनुपम है। उसे आप अपने जैसा क्यों बनाना चाहते हैं। उसे उसी के जैसा बनने के लिए स्वतंत्रता दीजिए।

लेकिन मन की अकड़न के कारण एक पिता अपने बेटे को स्वतंत्रता नहीं देना चाहता। अपनी सोच की परिधि से मुक्त नहीं होने देता है।

नया सीखने की चाह

बुढ़ापे को स्वर्णिम बनाने का प्रथम सूत्र है, कुछ नया सीखने की चाह। प्रतिपल कुछ नया जानने और जीने की उमंगे। वह चाह और उमंग ही आपको जीवंतता देती है। गति और प्रगति देती है।

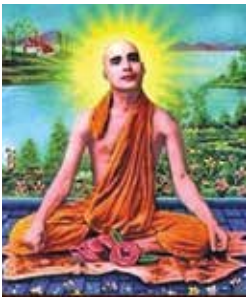

स्वामी रामतीर्थ अमेरीका जा रहे थे। वे जिस जहाज पर यात्रा कर रहे थे उसी जहाज पर एक नब्बे वर्षीय वृद्ध व्यक्ति यात्रा कर रहा था। वह वृद्ध व्यक्ति न किसी से अधिक बोलता था और न यहां-वहां बैठकर समय बिताता था। वह बैठ जाता एक कोने पर और कुछ सीखने में व्यस्त हो जाता था। सुबह से शाम तक वह निरंतर सीखता रहता। एक दिन स्वामी रामतीर्थ ने उस वृद्ध से पूछ ही लिया, महाशय! आप सुबह से शाम तक क्या सीखते रहते हैं?

वृद्ध ने कहा, मैं चीनी भाषा सीख रहा हूं। सुना स्वामी रामतीर्थ ने। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, इस उम्र में आप चीनी भाषा सीख रहे हैं? वृद्ध ने पूछा, किस उम्र में? स्वामी रामर्तीर्थ बोले, आप नब्बे वर्ष के लगभग दिखाई दे रहे हो। इस उम्र में आप एक कठिनतम भाषा सीख रहे हो। आखिर इस उम्र में आप यह सीखकर क्या करोगे?

वृद्ध ने पूछा, भाई! तुम कहाँ के रहने वाले हो? स्वामी जी ने कहा, मैं भारतीय हूं। वृद्ध बोला, अब मैं समझा कि इतने समृद्ध देश भारत के लोग गरीब क्यों हैं।

एक अनावश्यक उत्तर सुनकर स्वामी रामतीर्थ ने कहा, महाशय! आखिर आप कहना क्या चाहते हैं? आपके दार्शनिक कथन का अर्थ मैं समझ नहीं पाया। मुझे समझाइए!

वृद्ध बोला, जहां कुछ नया सीखने और जानने की उमंग मर जाती है वहां जीवन मर जाता है। जहां जीवन मर जाता है वहां से समृद्धि विदा हो जाती है। मैं अभी मरा नहीं हूं। मैं जीवित हूं। मैं जीवित हूं इसीलिए कुछ नया सीख रहा हूं। और जब तक मरूंगा नहीं तब तक सीखता ही रहूंगा।

यह है जीवन का लक्षण। यह है जीवंत और ज्वलंत जीवन। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि आप प्रतिदिन एक नई भाषा सीखिए। लेकिन मैं आपसे यह कहता हूं कि कुछ नया सीखने के लिए तैयार रहिए! प्रतिदिन कुछ नया सीखिए!

वे लोग जीवन की दौड़ में पिछड़ जाते हैं जो मरने से पहले ही मर जाते हैं। मृत्यु तो एक ही बार घटती है। उसे जब घटना है तब वह घटेगी। परंतु उसके घटने से पूर्व ही उसकी चिंता कैसी? उसकी चिंता में हाथ-पैर लटकाकर बैठ गए तो जीवन थम जाएगा। जीवन का थम जाना ही बुढ़ापा है।

कुछ नया सीखना ही जीवन है। कुछ नया सीखने की उमंग ही यौवन है।

अगर कली खिलने से पहले ही मुरझाने से डर जाए तो वह कली कभी नहीं खिल पाएगी। अगर गिरने के भय से ही कोई दौड़ना बंद कर दे तो वह कभी नहीं दौड़ पाएगा। यदि डूबने के डर से ही कोई पानी में पैर न रखे तो वह कभी भी तैरना नहीं सीख पाएगा। सदैव कुछ नया सीखने के लिए तैयार रहिए। Be ready to learn something new. प्रतिदिन अपने जीवन में देखिए कि आपने आज नया क्या सीखा।

यह तो मैं पचास या साठ वर्ष की आयु की बात कर रहा हूं, कुछ लोग तो बीस और तीस वर्ष की अवस्था में ही बूढ़े हो जाते हैं। साठ तो बहुत बाद में आते हैं। क्योंकि कुछ नया सीखने की इच्छा ही मर जाती है। सदा कुछ नया सीखते रहें, नया सीखते रहें।

मैं एक संत के पास गया था। अस्सी वर्ष की उनकी अवस्था थी। बड़े विद्वान थे वे। मुझे देखकर वे उठ खड़े हुए और बोले, आइए, आइए। मैंने सुना है कि आप ध्यान शिविर लेते हो। मेरी भी इच्छा है कि आप मुझे भी कुछ सिखाएं।

यह है कुछ नया सीखने की उमंग। कुछ नया सीखिए। कुछ श्रेष्ठ कीजिए। रूटीन में भी आप जो करते हैं उसे भी श्रेष्ठता से करने की कोशिश कीजिए।

महानता का सूत्र

मैंने कहीं एक वाक्य पढ़ा था- जो महान होते हैं वे कोई अलग काम नहीं करते हैं, लेकिन वे जो काम करते हैं, उसे महानता से करते हैं। Great People do not do any extra ordinary things but whatever they do, they do in extra ordinary way. जो भी आप करते हैं उसमें नवीनता लाओ। बहनें रसोई बनाती हैं। उन्हें विचार करना चाहिए कि वे रसोई में क्या नवीनता ला सकती हैं जिससे श्रेष्ठ खाना तैयार हो। जिससे परिवार का स्वास्थ्य बढ़े। जो बेटा प्रतिदिन खाने की शिकायत करता है वह भी खाने की प्रशंसा करे।

आप प्रतिदिन ऑफिस जाते हैं। आप विचार कर सकते हैं कि आप ऑफिस में क्या कुछ नयापन ला सकते हैं, जिससे बिजनिस केवल बिजनिस न रहे, बल्कि उससे लोगों का मंगल हो, लोगों का कल्याण हो। यह आप सोच सकते हैं। पर क्या आपने ऐसा सोचा? नहीं सोचा। आपने अपने लाभ तक ही अपनी बात सोची। सर्व-कल्याण और सर्व-मंगल का भाव आपने नहीं बनाया।

सृजनधर्मी बनें

आप जहां हैं वहीं से शुरू कर सकते हैं। मंदिर और स्थानक ही पूजा के स्थान नहीं हैं। आपका ऑफिस भी आपका पूजागृह बन सकता है। आपका कारखाना ही आपका मंदिर बन सकता है। आपकी दुकान ही आपका उपासना-कक्ष बन सकता है। लेकिन हम कभी सोचते ही नहीं कि हमें कुछ श्रेष्ठ भी करना चाहिए, कि हमें कुछ नया भी करना चाहिए।

शिक्षक से विद्यार्थी क्यों बोर हो जाते हैं? क्योंकि शिक्षक वही का वही सिखाता है जो किताबों में लिखा है। किताब में लिखा ही सिखाना है तो उसमें नवीनता क्या है? विद्यार्थी फिर वह तो किताब से ही पढ़ सकता है। उसे शिक्षक के पास जाने की जरूरत ही क्या है। शिक्षक की काबिलियत तभी है जब वह कुछ नए ढंग से सिखाए। लेकिन अधिकांश शिक्षक इस विषय में सोचते ही नहीं हैं। ड्यूटी पूरी करने पर ही उनकी दृष्टि होती है। अगर शिक्षक सोच ले कि कल जब मैं क्लास में जाऊंगा तो क्या सिखाऊं और जो भी सिखाऊं उसे सिखाने में नवीनता हो। उसको रसपूर्ण मैं कैसे बनाऊं। वह ऐसा करेगा तो उसे वह सब कुछ करते हुए बड़ा आनंद आएगा। और वह आनंद उसकी नवीनता से आएगा।

जीवन को सृजनात्मक बनाएं। सृजनात्मकता बुढ़ापे को स्वर्णिम बनाने का पहला स्वर्णिम सूत्र है।

दूसरा सूत्र है, वृद्ध व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय बच्चों के साथ खेलें। ऐसे खेलें जैसे वह स्वयं भी बच्चा है। पुरानी कहावत कहती थी, Family who prays together, stays together. जो परिवार साथ में प्रार्थना करता है वह परिवार साथ में रहता है। मैं उस कहावत को थोड़ा बदलना चाहूंगा, Family who plays together, stays together. जो परिवार साथ में खेलना जानता है वह परिवार साथ में रहता है।

बच्चों के साथ खेलें

क्या आप अपने बच्चे के साथ कभी खुले हृदय के साथ खेले हो? कभी खेले भी हो तो आपका बड़प्पन आपके साथ रहा है। और आपका बड़प्पन जब साथ रहता है तो आप खेल ही कहाँ पाते हैं। खेल में भी आप अपना आदेश चलाते रहते हैं। बच्चों के साथ बच्चे बनकर खेलें। यह बात आपको थोड़ी नई लगेगी। लेकिन एक बार आप करके

तो देखिए कि आपको कितना उत्साह प्राप्त होता है। क्योंकि आप जिसके साथ रहते हो वैसी ही आपकी ऊर्जा बन जाती है। बच्चे का मतलब है, एक खिलता हुआ जीवन। उसके भीतर प्राण-ऊर्जा सर्वाधिक होती है। हम कहते हैं कि बच्चे के भीतर बड़ी स्फूर्ति है। पर कभी विचार किया कि उसमें स्फूर्ति क्यों है? ..... शायद वह खाना आपसे कम खाता है, पर उसके भीतर जो ऊर्जा है, प्राण-ऊर्जा है, प्राणशक्ति है, वह उसके भीतर बहुत अधिक है। क्योंकि उसके भीतर एक उत्साह है। उसे आप कहें, चलो, तो वह चलता है। उसे आप कहें, दौड़ो, तो वह दौड़ता है। कहो कूदो तो कूदता है। वह सब कुछ करने को राजी और तैयार है।

बच्चों के लिए प्रतिदिन आधा घंटा निकालें और खेलें उनके साथ। कैसे खेलें? बड़े होकर नहीं, बच्चे बनकर खेलें। उस समय सब भूल जाएं। छोड़ दें लोगों की परवाह कि वे देखेंगे तो क्या कहेंगे। कहेंगे तो कहने दीजिए। बच्चों के साथ बच्चे बनकर खेलिए। आप देखना आपके भीतर कितना उत्साह बढ़ेगा।

एक छोटा-सा अनुभव कीजिए। आधा घंटा आप अस्पताल के भीतर घूमकर आइए। देखिए आपको कैसा अनुभव होता है। फिर आधा घंटा छोटे बच्चों के स्कूल में घूमकर आइए। फिर देखिए आपको कैसा अनुभव होता है। आप स्वयं देख लेंगे। जब आप अस्पताल में आधा घंटा घूमकर आएंगे, आपको थोड़ी थकान अनुभव होगी। क्यों?

क्योंकि वहां सब बीमार हैं। बीमार व्यक्तियों में प्राणशक्ति कमजोर पड़ गई है। जब आप वहां जाते हो तो आपके आभामंडल से वे भी प्राणशक्ति को खींच लेते हैं। तो आपको थोड़ी थकान लगती है। लेकिन जब आप बच्चों के स्कूल से घूमकर आते हो तो स्वयं को तरोताजा अनुभव करते हो। क्योंकि बच्चों के भीतर प्राणशक्ति अधिक है। उनके पास जाने से आपको प्राणशक्ति प्राप्त होती है और स्वयं को रिलेक्स अनुभव करते हो। अपने को Fresh अनुभव करते हो।

आप बच्चों के साथ बच्चे बनकर खेलेंगे तो आपमें प्राण-ऊर्जा का विकास होगा। अगर बच्चों के सामने बड़े बने रहे, उनकी गलतियां निकालते रहे, ये मत करो, वह मत करो, ऐसा मत करो, वैसा मत करो, तो कुछ नहीं होगा। आपको प्राणशक्ति नहीं मिलेगी। इसके विपरीत उन्हें डांटने में ही आपकी प्राणशक्ति का क्षरण हो जाएगा।

स्पर्धा नहीं, सौजन्य

बच्चों के साथ बच्चा बनकर के खेलें। उतने समय के लिए अपनी उम्र को भूल जाओ। केवल खेलो। और उस खेल के लिए यह नियम भी हो कि उसमें न कोई हारेगा और न कोई जीतेगा। अथवा जीतेंग तो सब जीतेंगे और हारेंगे तो सब हारेंगे।

एक जगह Fun club चलता था। उस Fun club का पहला नियम था, I am support everyone to win. कि मैं जीतने के लिए सबको सहयोग दूंगा। विरोधी टीम को भी। अब आपको यह बड़ा अजीब लगेगा। क्योंकि जब भी हम खेलते हैं तो खेल में प्रतिस्पर्धा का भाव आ जाता है। मैं जीत जाऊं और वह हार जाए। और जहां प्रतिस्पर्धा आ गई, वहां हिंसा आ गई।

मैंने पढ़ा था, कलकत्ता में फुटबॉल का मैच चल रहा था। एक टीम जीतने लगी और दूसरी हारने लगी तो दर्शकों में दंगे हो गए।

दो व्यक्ति वहां मर गए। खेल-खेल में हिंसा हो जाती है। क्योंकि खेल को प्रतिस्पर्धा बना दिया जाता है।

तो खेल का पहला नियम यह हो कि मैं जीतने के लिए सबको सहयोग करूंगा। दूसरा नियम, मैं अपनी ओर से सौ प्रतिशत दूंगा। और अपनी ओर से सौ प्रतिशत दें।

जटिलता नहीं, तरलता

बुढ़ापे को स्वर्णिम बनाने का जो दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र है वह है कि वृद्ध व्यक्ति बच्चों के साथ कुछ देर के लिए खेले। बच्चों में ऐसे घुल-मिल जाएं कि बच्चों को यह न लगे कि आप उनके लिए बाधा हैं। कई बार मैं देखता हूं कि वृद्धों को देखकर बच्चे सहम जाते हैं। वृद्धों ने अपने को इतना जटिल और कठोर बना लिया है कि उन्हें देखते ही बच्चे सहम जाते हैं। अपने को कठोर मत बनाइए। सरल बनाइए। सहज बनाइए। बच्चों के साथ ऐसे घुलिए कि आपको देखते ही बच्चे मानें कि उनके सबसे अच्छे मित्र आ गए हैं। बच्चे हंस रहे हैं तो आप भी हंसें। वे खेल रहे हैं तो आप भी खेलें। जब आप ऐसा करेंगे तो आप तो उनसे कुछ ग्रहण करेंगे ही वे भी आपसे कुछ ग्रहण करेंगे। वे भी आपके अंतःकरण में झांकने की कोशिश करेंगे।

देखना यह आपको बहुत मधुर लगेगा। आप प्रतिदिन उनके साथ खेलते हो। फिर एक दिन जब आप बीमार पड़ते हो तो आपका पोता आपके पास आएगा और आपके सिर पर हाथ रखकर कहेगा, दादाजी! सिरदर्द हो रहा है क्या? मैं दबा दूं थोड़ा! देखना आपका दर्द बच्चे की बात सुनते ही चला जाएगा। देखना आप कि जब बच्चा आपके सिर पर हाथ रखता है तो कैसा लगता है। लेकिन यह तभी हो पाएगा जब आप पहले उनके निकट जाओगे। अगर आप कहो कि मैं तुम्हारा दादा हूं, तुमको मेरे पास आना ही चाहिए, सेवा करनी चाहिए।

हो सकता है कि वह सेवा कर देगा, पर इसलिए कर देगा क्योंकि करनी ही चाहिए। लेकिन संबंध तभी बनेगा जब उनके साथ आप खेलेंगे। तो बुढ़ापे को स्वर्णिम बनाने का दूसरा सूत्र है कि प्रतिदिन हम बच्चों के साथ कुछ देर के लिए खेलें।

दीर्घ श्वास का चमत्कार

बुढ़ापे को सुखद और स्वर्णिम बनाने का तृतीय सूत्र है, व्यायाम। स्वामी रामतीर्थ के जीवन का प्रसंग है। एक बार वे एक वृद्ध व्यक्ति से मिले। वह व्यक्ति बहुत समृद्ध था। पर जितना समृद्ध था उतना ही अक्षम भी था। चलना-फिरना तो दूर, हिलना-डुलना भी उसके लिए कठिन हो गया था। उसने स्वामी जी से कहा, स्वामी जी! मेरा जीवन तो मुझ पर ही भार बन गया है। न में चल सकता हूं और न उठ सकता हूं। मैं क्या करूं? अब तो मैं श्वास गिन रहा हूं कि शरीर का बंधन छूटे तो मैं विदा लूं।

स्वामी राम ने कहा, इतना निराश क्यों बनते हो? तुम अपने हाथ-पैर नहीं हिला सकते हो, कोई बात नहीं। श्वास तो तुम ले सकते हो न? तुम्हें कुछ नहीं करना है। तुम गहरे श्वास लो और गहरे श्वास छोड़ो। यह छोटी-सी शुरुआत करो। सुबह और शाम पचास-पचास गहरे श्वास लो और गहरे श्वास छोड़ो। श्वास तो तुम

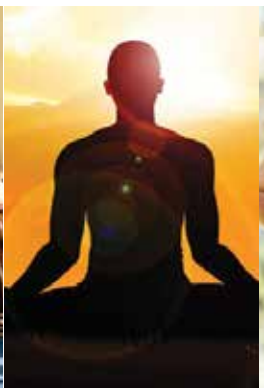

ले ही रहे हो। बस तुम्हें इतना करना है कि उसे गहराई से लो और गहराई से छोड़ो।

उस व्यक्ति ने गहरी श्वास को अपनी साधना बना लिया। वह गहरे से गहरे श्वास का अभ्यास करता रहा। फिर कोई छह महीने के बाद स्वामी रामतीर्थ उधर से गुजरे तो उन्होंने देखा, वह व्यक्ति केवल चल ही नहीं रहा था बल्कि दौड़ रहा था। उसने कहा, स्वामी राम! आपने तो चमत्कार कर दिया।

व्यायाम स्वर्णिम वार्द्धक्य का तृतीय सोपान है। अगर आप हाथ-पैर को नहीं हिला सकते हो, कम से कम गहरा श्वास तो ले ही सकते हो। आज अक्सर लोग कह देते हैं कि हमें व्यायाम करने का अवसर नहीं मिलता है। मैं नहीं कहता हूं कि आप घंटा, आधा घंटा उठिए बैठिए। मैं आपसे मात्र इतना कहता हूं कि श्वास को गहरा बनाइए।

लेकिन हम गहरा श्वास ले ही कब पाते हैं। श्वास भी हम आधा-अधूरा ही ले पाते हैं। हम ठीक ढंग से श्वास लेना ही भूल गए हैं। ठीक ढंग से श्वास लेना और छोड़ना सीखने के लिए हमें पुनः लौटना पड़ेगा बचपन की ओर। जरा देखिए, एक छह महीने का बच्चा जो लेटा हुआ है बिस्तर पर, वह कैसे श्वास ले रहा है। देखना आप, जब वह श्वास लेता है तो उसका पेट ऊपर जाता है और जब श्वास छोड़ता है तो उसका पेट नीचे जाता है। वह अपनी नाभी से श्वास लेता है और नाभी से श्वास छोड़ता है।

आप कैसे श्वास लेते हैं? जब आपको कहा जाता है कि गहरा श्वास लो तो आपकी छाती बाहर आती है और भीतर जाती है। श्वास नाभी तक पहुंचता ही नहीं है। हमारी श्वास लेने की जो क्षमता है, उसका हम पंद्रह से बीस प्रतिशत ही उपयोग करते हैं। हमारी शेष क्षमता प्रसुप्त रहती है। इसलिए हमारे जीवन में ताजगी भी पंद्रह से बीस प्रतिशत ही है।

श्वास गहराई तक भीतर जाए। अक्सर जब लोगों से गहरे श्वास की बात की जाती है तो वे जोर से श्वास लेते हैं। जोर से श्वास नहीं लेना है। गहराई से श्वास लें और गहराई से बाहर छोड़ें। श्वास लें तो पेट बाहर आए और श्वास छोड़ें तो पेट भीतर जाए। यह एक छोटा-सा अभ्यास है, पर छोटा होते हुए भी आपके भीतर छिपी हुई अकड़न और जकड़न को मिटाने का बहुत सुंदर उपाय है।

आहार–संयम

स्वर्णिम वार्द्धक्य का चतुर्थ सूत्र है, आहार संयम। आहार संयम का अर्थ क्या है? आहार संयम का सर्वप्रथम सूत्र यह है कि आप भोजन तभी करें जब आपको सच में भूख लगे। क्या आप वस्तुतः भूख के अनुसार भोजन करते हैं? अथवा समय से बंधकर भोजन करते हैं? क्या भोजन पर बैठते हुए आपने अपने को कभी टटोला कि मुझे भूख है अथवा नहीं है? मुझे खाना चाहिए अथव नहीं खाना चाहिए? नहीं टटोलते हो। खा ही लेते हो। समय होता है और आप भोजन पर बैठ जाते हो।

भोजन के लिए बैठते हुए अपने आप से पूछना चाहिए कि मुझे खाना चाहिए अथवा नहीं खाना चाहिए। अगर सच में लगे कि भोजन करना ही चाहिए तो ही खाएं। जब भी आप भोजन करने के लिए बैठें तो अपने आप से पूछें कि सच में मुझे भोजन करना है या नहीं करना है। और जब आपकी उम्र चालीस वर्ष से ऊपर जाने लगे तो जरूर पूछना चाहिए। युवावस्था में जब आप बीस अथवा पच्चीस वर्ष के हैं तब तो आप के भीतर फिर भी निर्माण चालू है, लेकिन पच्चीस और तीस वर्ष की आयु के पश्चात् Degeneration कोष का क्षयीकरण चालू हो जाता है। अर्थात् नए कोष कम बनते हैं और पुराने कोष ज्यादा नष्ट होते हैं। पच्चीस वर्ष की अवस्था आती है कि शरीर जितना बढ़ना था उतना बढ़ गया अब धीरे-धीरे घटना शुरू हो गया।

ऊनोदरी

हमारे आगमों में बताया गया है, ऊनोदरी। ऊनोदरी का मतलब है पेट को थोड़ा खाली रखना। इसके पीछे क्या विज्ञान है? इसके पीछे एक बढ़िया विज्ञान है। कहा जाता है कि पेट का आधा हिस्सा Solid food अर्थात् ठोस आहार से भरना चाहिए। उसके बाद पच्चीस प्रतिशत भाग तरल आहार से भरना चाहिए। शेष चतुर्थ हिस्से को खाली छोड़ देना चाहिए। जैसे आप मिक्सी का उपयोग करते हो। यदि मिक्सी के पूरे डिब्बे को भर दिया जाए तो क्या वह घूम पाएगी? नहीं घूम पाएगी। थोड़ी जगह खाली छोड़नी पड़ेगी। वैसे ही हमारा पेट है। जब आपको लगे कि अब मैं थोड़ा-सा और खा सकता हूं, उस समय रूक जाएं। उस समय भोजन से उठ जाएं। और यह तभी होगा जब आप खाने के प्रति सजग रहो। अगर सजगता नहीं है, खा रहे हैं और सोच रहे हैं, खा रहे हैं और टी.वी. देख रहे हैं तो नहीं हो सकता है।

भोजन से उठने का सही समय

एक और उपाय मैं आपको बताता हूं कि आपको कब भोजन बंद कर देना चाहिए। जब आप भोजन करते हैं तो आपको दो डकार आती हैं। जब पहली डकार आती है तो वह इस बात की सूचना है कि आपका पेट पिछतर प्रतिशत भर गया है। फिर भी आप भोजन करते चले जाएं तो दूसरी डकार आती है, जो इस बात की सूचना है कि आपका पेट पूरी तरह से भर गया है। फिर भी अगर आप खाते चले जाओ तो वह खाना जैसा भीतर जाता है वैसा ही बाहर आ जाता है।

एक बहन ने पूछा था मुझसे एक बार कि भोजन से कब उठ

जाना चाहिए। मैंने उसे बताया, पहली डकार के पश्चात् भोजन से उठ जाना चाहिए। फिर भी यदि थाली में कुछ शेष है और खाना अनिवार्य है तो दूसरी डकार के बाद तो उठ ही जाना चाहिए।

उस बहन ने कहा, डकार? मुझे तो डकार आती ही नहीं है।

सजगता पूर्वक भोजन करें

आप हंस सकते हैं उस बहन पर। परंतु कितने लोग जानते हैं कि उन्हें डकार भी आती है। क्योंकि सजगता ही खो गई है। आप भोजन भी करते हैं तो सोते-सोते करते हैं, मूर्च्छा-भाव से भरे चित्त से करते हैं। सोते-सोते ही जिंदगी बीत जाती है। फिर एक समय आता है जब दशा ऐसी हो जाती है कि उठना हो तो सहारा लेना पड़ता है। चलते हैं तो लगता है कि ऊपर का फ्लोर कांप रहा है। सीढ़ी डगमगा रही है। तब जाकर के स्मरण आता है कि किसी health club में जाना चाहिए। और फिर बहुत बढ़िया फीस भरेंगे और खूब मेहनत करेंगे तथा थोड़ा वजन कम करेंगे।

यह सब करने की जरूरत ही क्या है? थोड़ा सजग हो जाओ। सजगता से खाना खाओ। भगवान् ने आपको इतना बढ़िया भोजन दिया है। क्या आप सजगता पूर्वक उस भोजन को खा भी नहीं सकते हैं? आज दुनिया में लाखों लोग ऐसे हैं जिन्हें दो वक्त की रोटी भी ठीक से नहीं मिल पाती है। आपको भोजन मिल रहा है, पर आपके भीतर भोजन के प्रति कोई आदर नहीं है। सजगता नहीं है। जब आप टी.वी. देखते हुए भोजन करते हो तो यह भोजन का अनादर है। भोजन के प्रति सजग होना सीखिए।

कितनी बार भोजन करें?

उसके बाद भोजन के संबंध में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम कम बार भोजन करें। आप दिन में एक बार भोजन करो तो यह आपके लिए श्रेष्ठतम है। यह श्रेष्ठतम है शरीर-शास्त्र के अनुसार भी और धर्मशास्त्र के अनुसार भी। एक बार में यदि संतुष्टि नहीं मिलती है तो दिन में दो बार भोजन करो। दो बार भोजन पर्याप्त है। परंतु देखा जाता है कि लोग दिन भर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। दिन भर खाने का मतलब है कि आप अपना ही अनादर कर रहे हैं। आप अपने आप ही व्याधियों को आमंत्रित कर रहे हैं।

अनासक्त चेतना का विकास

कम भोजन करें और कम बार भोजन करें, यह है आहार का संयम। स्वर्णिम वृद्धत्व का चतुर्थ सूत्र है, अपने भीतर अनासक्त चेतना का विकास करें। आपके भीतर जो पकड़ है उसे ढीला करें। आप पचास और साठ वर्ष के हो जाते हैं। आप को अपने जीवन में जो भी करना था वह कर लिया है, अब उस दौड़ से ऊपर उठ जाइए। अपने बुढ़ापे को बिताने के लिए आपको जितने धन की जरूरत है उतना धन अपने पास रख लीजिए। बाकी अपने पुत्रों पर छोड़ दीजिए। उन्हें जो करना है उन्हें करने दीजिए।

भारतवर्ष में एक व्यवस्था थी, संन्यास-आश्रम की व्यवस्था। जीवन के दो भाग बीत जाने पर यहां पर गृहस्थ सन्यास-आश्रम में प्रवेश ले लेते थे। सन्यास का अर्थ केवल यही नहीं है कि आप घर परिवार को छोड़ दें। घर में रहो पर घर की झंझटों से ऊपर उठ जाओ। घर में ऐसे रहो जैसे कमल कीचड़ में रहता है। कमल कीचड़ में खिलता है, पर कीचड़ से ऊपर रहता है। ऐसे ही आप घर में रहें, पर उससे अलिप्त रहें। उसमें घिरें नहीं। बच्चों से कह दो, भाई! हमने

जो करना था कर लिया, अब तुम्हें करना है। हां, यदि बच्चे आपसे सलाह देने आएं तो उन्हें सलाह जरूर दो। लेकिन टोकने की आदत छोड़ दो। अक्सर बूढ़े लोग टोकते रहते हैं कि हमारा जमाना था, हमने यह किया, वह किया, तुम क्या कह रहे हो। जरा समझो, आपको जमाना चला गया है। अब जिसका जमाना है उसे अपने ढंग से जीने दो।

आप जब अपने बच्चों को पुनः-पुनः टोकते रहते हो तो अपना आदर आप स्वयं कम कर लेते हो। उनके मन में आपके प्रति जो आदर है वह कम हो जाता है। पिता और दादा को तो ऐसा होना चाहिए कि बेटा अथवा पोता पूछने आए ..... दो बार पूछने आए तो एक बार सलाह दें। उल्टा नहीं होना चाहिए कि एक बार पूछने आए तो दो बार सलाह दें। अपनी सलाह को Valuable बनाओ। जैसे कोई अच्छा कंसलटैंट (सलाहकार) होता है तो उससे appointment लेनी पड़ती है। अपने आपको एक अच्छा कन्सलटैंट बनाओ। अपनी सलाह को ऐसे ही मत बहने दो। हां, कभी बहुत जरूरी लगे तो थोड़ा-सा कह दो। लेकिन उस कहने में भी आग्रह मत रखो। बच्चे को सीखने दो। एक बार गिरेगा ही तो। और एक बार गिरेगा तो उसे पता चलेगा। गिरेगा तो दूसरी बार ठीक से चलेगा। उसे गिरने से कितनी देर तक आप बचाएंगे। ज्यादा बचाओगे तो आपका बचाना भी उसे चुभेगा।

असुरक्षा भी जरूरी है

जब बुढ़ापा आ जाए तो छोड़ना सीखना चाहिए। अब बहुत हो चुका, अब बच्चों को अपना संभालने दीजिए। आप अपने आप को

ही संभालिए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि अपने बच्चों से आपको नफरत करनी चाहिए। बच्चों से प्रेम-पूर्ण रहिए। अपना पूरा वात्सल्य उन पर उड़ेलिये। लेकिन यह भी सत्य है कि प्रत्येक पौधे को विकसित होने के लिए एक जगह चाहिए, अवकाश चाहिए। उसे समुचित स्थान और अवकाश नहीं मिलेगा तो वह पौधा बड़ा नहीं हो पाएगा। कभी धूप भी आएगी, कभी आंधी भी आएगी, कभी बारिश भी आएगी, उस धूप, आंधी और बारिश में ही पौधा ठीक से विकसित हो पाएगा। आप कहो कि मैं उस पौधे को सभी कष्टों से बचाकर रखूंगा तो वह पौधा कभी भी ठीक से विकसित नहीं हो पाएगा।

एक बार एक किसान ने भगवान से प्रार्थना की कि भगवान्! मैं बड़ी मुसीबत में हूं। कभी खेती करता हूं तो ज्यादा धूप गिरती है और बीज जल जाता है। खेती खराब हो जाती है। कभी अधिक बरसात गिरती है और सारे पौधे पानी में बह जाते हैं। कभी पशु-पक्षी आकर के खेती को खा जाते हैं। मैं बड़ा कष्ट में हूं। आप मुझे वरदान दीजिए कि इस वर्ष कोई भी उपद्रव न आए। न ज्यादा धूप गिरे, न अधिक पानी बरसे, न पशु-पक्षी मेरी खेती को खाएं और न ही पौधों पर कोई बीमारी आए। बस, मुझे यह वरदान दे दो।

परमात्मा ने कहा, भाई! ठीक से विचार कर लो। किसान ने कहा, विचार की कोई जरूरत नहीं है। आप मुझे वरदान दे दीजिए। भगवान् ने उसे वरदान दे दिया। किसान ने बीज बोए। बहुत बढ़िया खेती हुई। न ज्यादा धूप थी, न ज्यादा बरसात थी, न आंधी थी और न कोई बीमारी थी। किसान ने फसल को बाजार में बेचा और प्रभूत लाभ कमाया। पर जब पुनः किसान ने उस फसल से बचाकर रखे हुए बीज को बोया तो उस बीज से कोई कोंपलें न फूटीं। क्यों?

क्योंकि वह बीज नपुंसक बन गया था। क्योंकि उस बीज के समक्ष कोई भी चुनौती नहीं थी, कोई भी कष्ट नहीं था।

आपने हेनरी फोर्ड का नाम सुना होगा। वह अरबपति व्यक्ति था। उसका बेटा अठारह वर्ष का हुआ तो किसी ने उसे किसी संस्था में नौकरी के लिए आवेदन-कर्त्ताओं की पंक्ति में खड़े देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि हेनरी फोर्ड का बेटा एक मामूली नौकरी के लिए पंक्ति में खड़ा हुआ है। उस व्यक्ति ने हेनरी फोर्ड के पास जाकर उसका कारण पूछा। हेनरी फोर्ड ने कहा, मैं जानता हूं कि मेरा बेटा नौकरी के लिए किसी-न-किसी लाइन में खड़ा है। पर उसके लिए यह जरूरी है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह कहीं पर पांच वर्ष तक नौकरी करे। वह जब एक मजदूर की तरह नौकरी करेगा और फिर बाद में मेरी कुर्सी पर बैठेगा तो उसे पता होगा कि उसकी फैक्टरी में जो मजदूर नौकरी कर रहा है सच में वह क्या कर रहा है। तब जाकर के उसे इस कुर्सी की कीमत पता चलेगी।

अपने बच्चों के प्रति एक सीमा से आगे जाकर मोहशील मत बनिए। उन्हें चलने दीजिए। गिरते हैं तो गिरने के अनुभव से उन्हें गुजरने दीजिए।

स्वर्णिम वार्द्धक्य का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है कि हम अपनी पकड़ को ढीला करें। बाहर और भीतर से थोड़ा अलग हो जाएं अलिप्त हो जाएं। अपने भीतर स्थिर हो जाएं। अनाग्रही बन जाएं। और सही अर्थों में कहूं तो जैन बन जाएं। जैन का मतलब ही है अनाग्रही हो जाना, अनेकान्त में उतर जाना।

सद्गुरु की कसौटी : अनाग्रह

एक वयक्ति सद्गुरु की तलाश में था। सद्गुरु की परीक्षा के लिए उसने एक युक्ति निकाली। उसने अपने घर के द्वार पर एक

पिंजरे में एक काला कौआ बन्द करके रख छोड़ा। संतों का उसके घर निरंतर आना-जाना होता था। जब भी कोई संत उसके घर पर आते तो वह कहता, देखो महाराज! मैंने कितना सुंदर हंस पाल रखा है। संत कहते, अरे मूर्ख हो तुम जो कौवे को हंस कह रहे हो। वह कहता, महाराज! आप जरा अपनी आंखों को साफ कीजिए। यह कौआ नहीं है, हंस है। संत नाराज होकर चले जाते।

लम्बे समय तक ऐसा ही चलता रहा। उसने अनेक संतों को नाराज कर दिया। पर उसकी उसे परवाह न थी। फिर एक दिन एक वृद्ध संत उसके द्वार पर आए। उसने अपनी बात दोहराई कि देखिए महाराज! मैंने कितना सुंदर हंस पाल रखा है।

संत ने कहा, भाई! यह हंस नहीं कौआ है। व्यक्ति ने कहा, महाराज! आपको दिखता नहीं है, यह कौआ नहीं है। यह हंस ही है। जरा अपनी आंखों को साफ करके देखिए।

संत ने उसी सहजता से कहा, भाई! ठीक है। यह तुम्हारी दृष्टि में हंस है और मेरी दृष्टि में कौआ है। तुम भी अपनी दृष्टि के अनुसार सही हो और मैं भी अपनी दृष्टि के अनुसार सही हूं। इस निर्णय को छोड़िए कि यह कौआ है या हंस है। बस इतना ध्यान रखना कि अपनी आंखों को खुला रखना, यह कौआ भी हो सकता है और हंस भी हो सकता है। आग्रह मत करना कि यह कौआ ही है अथवा हंस ही है। .....और उस व्यक्ति ने उसी क्षण उस संत के चरण पकड़ लिए। उसकी सद्गुरु की खोज को मंजिल मिल चुकी थी।

यह है अनाग्रह वृत्ति। इस वृत्ति का अपने भीतर विकास कीजिए! इस प्रकार मैंने स्वर्णिम वृद्धत्व के कुछ छोटे-छोटे सूत्र आपको कहे हैं। इन पर आप चिंतन करेंगे। मुझे विश्वास है कि ये सूत्र अवश्य ही आपके जीवन में उपयोगी सिद्ध होंगे, आपके लिए आनंद का द्वार बनेंगे।

स्वस्थ व सफल
जीवन यात्रा के
स्वर्णिम सोपान
आ घर
लौट चलें
-आचार्य शिव मुनि

खिड़की से आकाश दिखाई दे रहा है लेकिन खिड़की ही आकाश नहीं है। द्वार से शहर दिखाई दे रहा है पर द्वार ही शहर नहीं है। यह तो देखने का एक साधन है। आपके द्वारा एक छोटा–सा कर्म हुआ, आपने झूठ बोल दिया, लेकिन आपने उस झूठ को स्वीकार कर लिया तो आप उस झूठ से मुक्त हो गए।

4

आ घर लौट चलें

जो चाहिए, वही हो जाओ

एक छोटी-सी बच्ची थी। उसका नाम था लच्छी। लच्छी अपनी दादी मां के साथ गांव के किनारे एक छोटी-सी झोंपड़ी में रहती थी। घर में कोई और नहीं था। उसकी झोंपड़ी भी गांव से थोड़ी दूर ही थी। तो आस-पास कोई बच्चा भी नहीं था जिसके साथ लच्छी खेल सके। तो लच्छी बड़ी अकेली पड़ जाती थी। दादी मां भी उसके साथ खेल-खेलकर आखिर कितनी देर खेल पाती। उसे और भी काम थे घर के। तो लच्छी बड़ी उदास, बड़ी बेचैन और बड़ी दुखी रहती थी।

एक दिन लच्छी की झोंपड़ी के आंगन में एक मोर आ गया। उस मोर ने लच्छी के

झोंपड़े के आंगन में नाचने की शुरुआत कर दी। लच्छी बड़ी खुश हुई। बड़ी प्रसन्न हुई। मोर को देखकर वह हंसने लगी, नाचने लगी, गाने लगी। मोर भी खुश और लच्छी भी खुश। मोर को भी कोई मित्र मिल गया और लच्छी को भी नाचने का संयोग मिल गया।

धीरे-धीरे यह प्रतिदिन का क्रम बन गया। प्रतिदिन मोर आता और लच्छी के आंगन में नृत्य करता। और यह क्रम चलता ही गया। धीर-धीरे लच्छी आनंदित रहने लगी। उसकी निराशा, उसका दुख, उसका रोना कहाँ चला गया पता ही नहीं चला। मोर जैसे लच्छी के दिल और दिमाग में छा गया। वह उसका मित्र बन गया।

धीरे-धीरे समय बीतता चला गया। अब मोर रोज नहीं आता। कभी आता और कभी नहीं आता। दो दिन के बाद, तीन दिन के बाद, चार दिन के बाद मोर आता। लेकिन लच्छी अब प्रतिदिन नाचती थी। धीरे-धीरे मोर का आना और कम हो गया। पन्द्रह दिनों में, महीने में। धीरे-धीरे मोर ने आना बंद कर दिया। लेकिन लच्छी का नाचना, उसका आनंद चलता ही रहा।

यहां पर कहानी पूरी होती है। कहानीकार ने लिखा है, जो तुम्हें चाहिए वह तुम स्वयं बन जाओ। यदि तुम्हें आनंद चाहिए तो तुम

आनंद बन जाओ। लच्छी मोर को चाहती थी वह स्वयं ही एक दिन मोर बन गई। लच्छी मित्र चाहती थी स्वयं ही अपना मित्र बन गई। लच्छी प्यार चाहती थी वह स्वयं ही अपना प्यार बन गई।

यही जीवन को जीने का रहस्य है, What you want you become that. जो तुम्हें चाहिए वह तुम स्वयं बन जाओ। यह कहना तो हमें बहुत सरल लगता है पर जब करने जाते हैं तो बात हो नहीं पाती है। जब सुनते हैं प्रवचन में सुंदर कहानी तो चाहते हैं कि मैं भी उस मोर की तरह प्रसन्न और आनंदित हो जाऊं, लेकिन जब यहां से विदा होते हैं तो घर की समस्याएं चारों ओर से घेर लेती हैं। तब सोचते हैं कि सुनना और बात है तथा कर पाना और बात है।

लच्छी हमारा आदर्श है। उससे हमें इस रहस्य को सीखना है कि हम जो चाहें वह हम स्वयं बन जाएं। लेकिन यह आदर्श हमारा जीवन कैसे बने? और हम सच में चाहते क्या हैं आखिर? क्या कभी आपने सोचा? शायद हमें अभी पता ही नहीं है कि हम चाहते क्या हैं। बचपन में अगर आपसे पूछा गया होता कि तुम्हें क्या चाहिए। तो क्या उत्तर आता? कोई कहता मैं डॉक्टर बनना चाहता हूं। कोई कहता में इंजीनियर बनना चाहता हूं। कोई कहता मैं बड़ा बनना चाहता हूं। लेकिन ये उत्तर कहाँ से आ रहे हैं? उसने अपने आस-पास कुछ लोगों को देखा और उसके मन में अभिलाषा जागी कि मैं भी उन जैसा बन जाऊं। उसका यह अपना उत्तर नहीं है। बाहर की परिस्थितियों के प्रभाव से आया हुआ उत्तर है।

हिप्नोटाइज्ड व्यक्तित्व

आप एक छोटे-से बच्चे से पूछिए कि तुम्हें कौन-सी पेस्ट करनी है। तो उसे तुरंत टी.वी. की एडवरटाईजमेंट याद जा जाएगी। तत्क्षण वह कह देगा कि मुझे कोलगेट करनी है, कि क्लोज-अप करनी है।

एक व्यक्ति ने मुझे आकर पूछा, क्या बात है कि आप एकदम से

हिप्नोटाइज कर देते हो। बस आप ही याद रहते हैं। मैंने कहा, मैं क्या हिप्नोटाइज करूंगा। तुम पहले से ही हिप्नोटाइज्ड हो। ये जितने भी विज्ञापन हैं, वे आपको इतना सम्मोहित कर लेते हैं कि आपके अवचेतन

मन पर उनकी छाप अंकित हो जाती है। फिर आप दुकान पर जाते हैं तो आपको वही वस्तुएं याद आती हैं, वही नाम आपके मुंह से ध्वनित होते हैं और उन्हीं वस्तुओं को खरीदकर आप अपने घर ले आते हैं।

क्या चाहिए?

वस्तुत : हमें स्वयं पता नहीं कि सच में हम क्या चाहते हैं। एक बार हमें अपने आप से पूछना चाहिए शांति से बैठकर कि मुझे क्या चाहिए। सच में मुझे क्या चाहिए। प्रामाणिकता से अपने आप से पूछो। आप आश्चर्यचकित हो जाओगे कि आपको जो चाहिए उसका आपको पता ही नहीं है। अन्ततः आप कहोगे कि मुझे स्वयं समझ में नहीं आ रहा है कि मुझे क्या चाहिए। खोजते जाओ, खोजते जाओ, खोजते जाओ। और खोजने वालों ने कहा है, अन्ततः प्रत्येक मनुष्य को तीन चीजें चाहिएं। पहली चीज उसे जो चाहिए वह है स्वतंत्रता। उसे बन्धन अप्रिय है। वह स्वतंत्र होना चाहता है। दूसरी चीज उसे जो चाहिए वह आनन्द। और तीसरी वस्तु जो उसे चाहिए वह है शान्ति।

अब ये स्वतंत्रता, आनन्द और शांति हैं कहाँ पर? किस जगह पर हैं? कहाँ पर हम खोजें?

मानव : सृष्टि की श्रेष्ठ रचना

कहते हैं जब भगवान् ने सृष्टि की संरचना की तो उसने भिन्न-भिन्न प्राणी बनाए। कुत्ता बनाया, बन्दर बनाया, शेर बनाया ...। लेकिन इन सब प्राणियों में उसे कोई-न-कोई कमी दिखाई देती गई। बन्दर को बनाया तो उसे लगा कि पूंछ बहुत बड़ी बन गई। कुत्ते को बनाया तो पाया कि टिक कर बैठता ही नहीं है, भौंकता ही रहता है। शेर को बनाया तो पाया कि वह बहुत खूंखार दिखाई पड़ता है। उसने जो भी बनाया प्रत्येक में कोई-न-कोई कमी रह गई।

अन्ततः भगवान् ने एक ऐसे निर्माण का संकल्प किया जिसमें कोई कमी न रहे। ऐसा product जिसमें कोई खामी निकाल ही न सके। कहते हैं कि आखिर में भगवान् ने मनुष्य को बनाया। अपने इस सृजन पर भगवान् को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्हें विश्वास था कि यह उनका सर्वश्रेष्ठ सृजन है। आंख, नाक, मुंह और पूरा शरीर सब कुछ अद्वितीय है, ऐसा है जिसमें कमी को नहीं खोजा जा सकता है।

भगवान् ने सोचा, मनुष्य मेरी अद्वितीय कृति है। मनुष्य के सृजन में मैंने कोई कमी नहीं रखी है। यह तो मेरी सोच है। आखिर किसी से पूछ तो लेना चाहिए कि मेरी इस कृति में कहीं कोई कमी तो नहीं है।

यह कहानी खलील जिब्रान ने लिखी है। खलील जिब्रान लिखते हैं कि भगवान् ने निंदक को बुलाया और उससे कहा, भाई निंदक! मैंने मनुष्य का निर्माण किया है। यह मेरी सर्वोच्च कृति है। मुझे नहीं लगता कि इसके निर्माण में मैंने कोई कमी रहने दी है। फिर भी तुम इसका परीक्षण करो और बताओ कि कहीं कोई कमी तो नहीं रह गई है?

निंदक ने देखा। पूरा-का-पूरा परीक्षण कर डाला और बोला, एक

कमी रह गई भगवान्! आपने शेष तो सब किया पर मनुष्य के दिल पर खिड़की नहीं लगाई। वह अपने दिल में क्या-क्या छिपाकर रखेगा उसे कोई नहीं जान पाएगा।

निंदक ने आखिर कमी को खोज ही लिया। निंदक कमी खोज ही लेता है। फिर भी निंदक ने जिस कमी को खोजा वह कमी तो सच में मनुष्य में है ही।

आनंद–शांति–स्वतंत्रता

मनुष्य के हृदय में क्या-क्या छिपा है, यह दूसरा तो भले ही जान पाए या न जान पाए, स्वयं मनुष्य भी जान नहीं पाता है कि उसके हृदय में क्या छिपा है। वह जिस आनंद, शांति और स्वतंत्रता को बाहर के जगत में खोजता है, वस्तुतः वह आनन्द, शान्ति और स्वतंत्रता बाहर के जगत में है ही नहीं। वह उसके हृदय में ही छिपी है। पर हृदय में झांकने के लिए तो कोई खिड़की ही नहीं है। यही मनुष्य की त्रासदी है।

स्मरण रखें, वस्तुतः हमें जो चाहिए, वह बाहर है ही नहीं। वह हमारे भीतर ही छिपा है। अपनी चाह को पूरा करने के लिए हमें अपने भीतर लौटना चाहिए। अपने भीतर लौटकर ही हम पूर्णकाम बन सकते हैं। अपने भीतर लौटकर ही हम आनन्द और स्वतंत्रता में लौट सकते हैं। क्योंकि हमारा अन्तःकरण ही हमारा वास्तविक घर है।

घर लौटने के सूत्र

आज का हमारा विषय है, आ घर लौट चलें, अर्थात् लौटकर अपने घर में आ जाएं।

जब बच्चों की छुट्टियां आती हैं तो लोग घूमने के लिए हिल-स्टेशनों पर, मनोरंजन-स्थलों पर घूमते हैं। घ के बाद फिर लौटकर अपने घर आते हैं। घर पहुंचकर उन्हें एक विशेष प्रकार का विश्राम

और सुख मिलता है। हिल-स्टेशनों और मनोरंजन-स्थलों पर जो सहज सुख और विश्राम लोगों को नहीं मिलता वह उन्हें पुनः घर लौटने पर मिलता है। यात्रा के बाद जब लोग घर पहुंचते हैं तो उनके अन्तःकरण से आवाज आती है, वाह! घर पहुंच गए हैं।

अब जरा विचार कीजिए जिस घर में पहुंचकर आपको इतना विश्राम और इतना सुख मिलता है उस घर को बनाए हुए कितना समय हुआ है? पांच-पचास वर्ष ही तो हुए हैं। पांच-पचास वर्ष ही तो उस घर की आयु है। उस घर में पहुंचकर जब आपको इतना सुख मिलता है तो जो आपका Permanent घर है उस घर में पहुंचकर कितना सुख मिलेगा?

उसी घर पर लौटकर आने की आज हम चर्चा करेंगे। यह मैं कोई नई बात नहीं बता रहा हूं। प्रत्येक ऋषि और मुनि ने यह बात बताई है। यह बताया है कि कैसे हम घर पर लौटकर आ जाएं। अपने घर लौट आने का प्रथम सूत्र, प्रथम सोपान है, **निंदामि**। निंदामि जैनागम साहित्य का पारिभाषिक शब्द है।

अक्सर निंदामि शब्द का अर्थ किया जाता है, आत्मनिंदा करो। सम्वत्सरी आती है तो लोग आलोचना करते हैं और उसमें बोलते हैं, मुझसे बुरा न कोय। पर ऐसा कहना आलोचना नहीं है। आलोचना का अर्थ है, आत्मावलोकन। ऐसे ही निंदामि शब्द का अर्थ निंदा करना नहीं है। निंदामि का अर्थ है, आत्मनिरीक्षण। हम अपना निरीक्षण स्वयं करें। किस प्रकार निरीक्षण करें? How to observe? किस प्रकार देखें? सुना तो बहुत बार है कि अपने द्वारा अपने को देखो, लेकिन देखना कैसे? क्या सामने आइना रखकर देखें? क्या करें? आंखें बंद करते हैं तो विचार दिखते हैं, भावनाएं दिखती हैं, सपने आते हैं। फिर किस प्रकार देखें? किस प्रकार निंदामि करें?

निंदामि की एक विधि है। उसके तीन चरण हैं। प्रथम चरण है, Remembering, याद करें। क्या याद करें? सुबह से लेकर शाम तक, जब से आप जगे तब से लेकर वर्तमान क्षण तक आपने क्या-क्या किया सब कुछ याद करें, एक-एक क्षण को स्मरण करें। इसमें शुरू-शुरू में यह होगा कि आपको मोटी-मोटी बातें याद आएंगी। बीच-बीच में आप भूल जाएंगे..... फिर से आप स्मरण करें। यह है प्रथम चरण।

दूसरा चरण है, Reliving, अर्थात् उस अनुभव को पुनः जीएं। जैसे कि वह अभी घटित हो रहा है। जैसे आज दोपहर को किसी से आपका झगड़ा हो गया। फिर से जब याद करोगे तो फिर से आप उसी क्रोध को स्मरण करो, उसे अपनी स्मृति पर उतारो। जब यह दूसरा

चरण होता है तो तृतीय चरण आता है, उसको कहते हैं Releasing, अर्थात् उस अनुभव के संस्कारों से मुक्त हो जाना।

अब देखिये, आप कहेंगे याद करें, एक ओर तो सब विज्ञ-पुरुष कहते हैं कि भूतकाल को याद क्यों करना? उसे याद करने से होगा क्या? ऐसे भी भूतकाल की बहुत सारी बातें हमें याद आती रहती हैं। तो फिर याद करने से क्या फायदा होगा?

ज्ञान, विज्ञान, मूल्यांकन और संस्कार

हमारा जो मन है, उसके काम करने का एक ढंग है। मन कैसे काम करता है? पहले होता है ज्ञान, यानि कि किसी को हम देखते हैं। हां, इस आदमी को लगता है कि कहीं देखा है। यह है ज्ञान फिर होता है विज्ञान, हम पहचानते हैं, हां यह वही आदमी है जो दो दिन पहले मुझे उस टिकिट के काउंटर पर मिला था और उसने मेरी बड़ी मदद की थी। तुरंत तीसरा हिस्सा मन का जागता है, मदद की थी। तीसरा हिस्सा है मूल्यांकन। तीसरा हिस्सा कहता है, बहुत अच्छा आदमी है, सज्जन है, Very nice person. मुल्यांकन, वैल्यू करते हैं। आप। और उसके बाद चौथा हिस्सा जागता है, उसको कहते हैं, Impression. संस्कार।

पहला ज्ञान, दूसरा विज्ञान, तीसरा मूल्यांकन और अंतिम संस्कार। अब बन्धन कहाँ पर है? जब तक आप जानते हैं, तब तक तो कोई बन्धन नहीं है, ठीक है जान लिया। पहचानते हो, विज्ञान, पहचान लिया। मूल्यांकन भी कर दिया, अच्छा है। तब तक भी कोई बन्धन नहीं है। बंधन है संस्कार में। जब वह इम्प्रेशन आपके मन के ऊपर आ जाए। फिर होता यह है कि जब दूसरे दिन भी वह मिलेगा तो फिर से पुराना इम्प्रेशन ऊपर आएगा और आप उसको नए नजरिए से नहीं देख पाओगे।

संस्कारों का प्रभाव

एक उदाहरण से इसे समझें। रमेश नाम का एक व्यक्ति था। एक अन्य व्यक्ति था जिसका नाम जयेश था। जयेश के पास बहुत बड़ी लाइब्रेरी थी। उसमें बड़ी सुंदर-सुंदर पुस्तकें थी। दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह था उसकी लायब्रेरी में। रमेश कोई शोध-कार्य कर रहा था। रिसर्च कर रहा था किसी विषय पर। तो उसको किसी पुस्तक की आवश्यकता पड़ी। उसने सुना, जयेश नाम का एक बढ़िया व्यक्ति है। उसके पास बड़ी लायब्रेरी है। क्यों न मै उसके पास जाऊँ और उससे मदद मांगूं। सुबह-सुबह रमेश जयेश के पास पहुंचा। आज जयेश का मूड बहुत बढ़िया था। सुबह-सुबह फैक्टरी से फोन आया था कि हमको जो टेंडर मिलने वाला था वह मिल गया है और बहुत अच्छा प्रोफिट होने वाला है। बड़ा खुश था जयेश। ठीक उसी समय रमेश वहां पहुंचा। वहां पहुंचकर उसने कहा, भाई! मुझे आपकी एक छोटी-सी मदद चाहिए।

जयेश ने कहा, कहिए-कहिए, आइए बैठिए। मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं, कहिए?

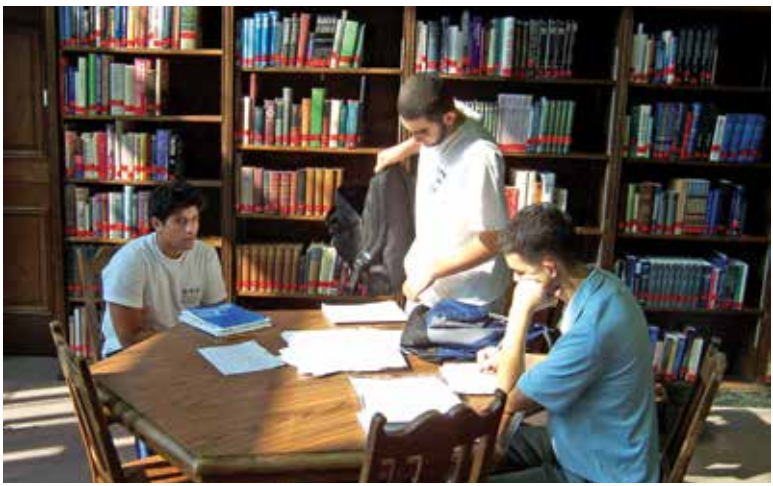

रमेश ने कहा, मुझे एक पुस्तक चाहिए।

जयेश बोला, हां-हां, क्यों नहीं। मेरी लायब्रेरी को अपनी ही मानिए। जो पुस्तक चाहिए शौक से लीजिए।

फिर जयेश ने रमेश को लायब्रेरी दिखाई। किताबें दीं। इतना ही नहीं, उसे अपने साथ बैठाया, चाय भी पिलाई।

रमेश एकदम प्रसन्न हो गया। उसने अपने मन मे कहा, जयेश भाई क्या बढ़िया आदमी है, एक पुस्तक मांगने आया और सारी लायब्रेरी दिखा दी, और साथ में चाय भी पिलाई। न जान, न पहचान, आज दुनिया में ऐसे आदमी कहाँ मिलते हैं।

जयेश के प्रति एक बहुत बढ़िया इम्प्रेशन लेकर रमेश अपने घर लौटा। रमेश का एक मित्र था नरेश। नरेश शाम को मिलने के लिए रमेश के घर पर आया। वह भी कोई शोध कार्य कर रहा था और उसे भी किसी पुस्तक की आवश्यकता थी। उसने अपनी आवश्यकता अपने मित्र रमेश के समक्ष कही। रमेश बोला, समझो कि तुम्हारी आवश्यकता पूर्ण हो गई है। आज ही मैं एक आदमी से मिला हूं। बड़ा ही भला आदमी है वह। जयेश उसका नाम है। एक बड़ी लायब्रेरी है उसकी। मुझे भी एक पुस्तक की आवश्यकता थी। आज सुबह में उसके घर गया। उसने मुझे न केवल पुस्तक ही दी बल्कि मुझसे इतना प्रेमपूर्ण व्यवहार किया कि उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता, प्रथम भेंट में ही उसने मुझे अपना प्रशासक बना लिया। मुझे अपने साथ बैठाया, चाय पिलाई और कहा कि मुझे जिस भी पुस्तक की आवश्यकता पड़े मैं निःसंकोच भाव से ले जा सकता हूं। ऐसा करो कि तुम भी जयेश भाई के पास चले जाओ। तुम्हें जो भी पुस्तक चाहिए, वहां से प्राप्त कर लो। श्रेष्ठतम व्यक्ति है वह। श्रेष्ठतम अनुभव लेकर तुम वहां से लौटोगे।

जयेश की ऐसी प्रशंसा सुनकर नरेश बड़ा प्रभावित हुआ। वह पुस्तक लेने के लिए जयेश के घर के लिए रवाना हो गया।

उधर जयेश फैक्टरी में गया तो उसे मालूम पड़ा कि जो टेण्डर उसे मिलने वाला था वह मिल नहीं सका। लाखों का लाभ होने वाला था और वह पानी में बह गया। इससे उसको बड़ा कष्ट हुआ। उसका मूड-ऑफ हो गया। वह घर आया तो पत्नी से अनबन हो गई। मूड और अधिक बिगड़ गया। बड़ा टेंशन में था वह। उस समय नरेश उसके द्वार पर पहुंचा और नमस्कार करके बोला, भाई साहब! मुझे आपकी सहायता चाहिए?

नरेश बोला, मुझे आपकी लायब्रेरी से एक पुस्तक चाहिए।

जयेश बोला, यह पुस्तक लेने का कोई समय है? लायब्रेरी बन्द हो गई। पुस्तक नहीं मिलेगी।

नरेश जयेश का उत्तर सुनकर हैरान रह गया। वह एक श्रेष्ठ इम्प्रेशन लेकर जयेश के पास आया था। पर जयेश के रूक्ष व्यवहार से वह बहुत दुःखी हुआ और सोचने लगा, अरे, रमेश ने यूं ही इसकी प्रशंसा के पुल बांध दिए। यह तो कहीं से भी श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं है। मैं इसके घर पर आया हूं और इसने पानी तक नहीं पूछा।

एक बुरा इम्प्रेशन लेकर नरेश लौट गया।

करीब एक मास बीत गया। एक मास के पश्चात् संयोग से तीनों व्यक्ति एक तिराहे पर मिले। एक राह से रमेश आ रहा था, दूसरी राह से नरेश आ रहा था और सामने से जयेश आ रहा था। रमेश की दृष्टि जयेश पर पड़ी। उसे देखते ही प्रसन्नता के भावों से भर गया। उसके मन ने कहा, वाह! क्या बढ़िया आदमी है। अहोभाग्य मेरा कि आज सुबह-सुबह उसके दर्शन हो गए। उसने मेरी कितनी मदद की थी। उसने मुझसे कहा था कि मैं पन्द्रह दिन में उसकी पुस्तक लौटा दूं, पर मैं नहीं लौटा पाया। अभी मैं उससे मिलता हूं और क्षमा मांग लेता हूं। ये भाव रमेश के मन में चल रह हैं।

दूसरी ओर उसी समय नरेश की दृष्टि जयेश पर पड़ी। उसे देखते ही उसका मन शिकायत से भर गया। उसके मन ने कहा, कहाँ सुबह-सुबह अपशकुन हो गया। कैसे आदमी का मुंह देख लिया। आज न जाने दिन कैसा जाएगा।

देखिए, आदमी एक ही है, उसे जब रमेश देखता है तो कहता है, वाह! क्या बढ़िया आदमी है। नरेश देखता है तो कहता है, कहाँ अपशकुन हो गया।

उधर रमेश और नरेश को देखकर जयेश के मन में भी विचार जगे। जैसे ही उसने रमेश को देखा तो उसका मन शिकायत से भर गया, अच्छा, मिल गए महानुभाव, कह दिया था कि पन्द्रह दिन बाद पुस्तक लौटा देना, महीना भर बीत गया, पर इसे फोन करने तक की फुरसत नहीं।

फिर जयेश की दृष्टि नरेश पर पड़ी तो उसने सोचा, यह बेचारा पुस्तक मांगने आया था, मुसे गुस्सा आ गया, मैंने इसे किताब भी नहीं दी और पानी तक नहीं पूछा। अब मैं इससे क्षमा मांग लेता हूं।

जरा विचार कीजिए, कौन किसके बारे में क्या-क्या सोच रहा है। ये हैं हमारे मन के ऊपर लगे हुए संस्कार। रमेश को जयेश में अच्छा आदमी क्यों दिखाई दे रहा है? क्या इस वर्तमान क्षण में जयेश उसके लिए अच्छा है? सच में देखा जाए तो वर्तमान क्षण में जयेश उसके लिए अच्छा नहीं है। उसके मन में उसके प्रति गुस्सा है, क्योंकि उसने समय पर पुस्तक वापिस नहीं लौटाई है। इस क्षण में जयेश के मन में नरेश के प्रति प्रेम है, परंतु नरेश को क्या दिखाई देता है? बुरा आदमी उसे दिखाई देता है। क्यों? क्योंकि Past experience उसकी आंखों के सामने आ जाता है। और यह जो Past experience है जिसका चश्मा लगाकर हम दूसरे आदमी को देखते हैं, उसी चश्मे का नाम है सस्कार, इम्प्रेशन। और ऐसे न जाने

कितने सारे इम्प्रेशन्स, कितने सारे संस्कार हम अपने मन के भीतर भरकर के जीते हैं।

निंदामि यानि संस्कारों से मुक्ति

निंदामि का अर्थ है, उन संस्कारों से मुक्त हो जाना। प्रत्येक दिन को एक नए ढंग से जीने की शुरूआत करना। प्रतिदिन जब आप सुबह उठें तो एक नया जीवन, एक नई सांस, एक नया सम्बंध .... .. कल झगड़ा हुआ तो आज रात को जब सोएं तो निंदामि करें। याद करें, देखें ऐसा हुआ और छोड़ दें।

दूसरे दिन जब सुबह उठें तो नया सम्बंध, नई बात। आज जब उसका फोन आए तो याद नहीं रखना कि अच्छा कल झगड़ा किया था और आज फोन कर रहा है, मधुर-मधुर बातें कर रहा है। कल को कल पर छोड़ देना। कल, कल था, आज, आज है। कल झगड़ा हुआ था वह कल के साथ ही विदा हो चुका है। आज एक नया सुप्रभात है। आज के सुप्रभात पर कल के झगड़े को क्यों पोतना?

विवेकानन्द से उसकी मां ने कहा, देख बेटे! उस वृक्ष के पास नहीं जाना। वहां पर भूत रहते हैं। विवेकानन्द ने कहा, मां भूत से वे डरते हैं जो भूत में जीते हैं।

..... और हम तो सब लोग भूत में ही जीते हैं। कहने को हम इन्सान हैं पर वस्तुतः हम भूत ही भूत हैं। भूत-बंगला ही भूत-बंगला है सब ओर। क्योंकि भूतकाल में जीने की आदत, हिस्ट्री में जीने की आदत ... पांच दिन पहले किसी ने कुछ कह दिया और आपका अपमान हो गया, फिर वह आपसे कोई सलाह लेने आएगा तो आप मुंह घुमा लेंगे। क्यों? क्योंकि पांच दिन पहले उसने आपका अपमान किया था। पकड़ के रखते हैं आप भूत को, मूल्यवान से मूल्यवान संपत्ति की तरह संभालकर रखते हैं...।

निंदामि उपाय है भूत से मुक्त होने का। याद रखें, निंदामि जब तक जीवन में नहीं होता है तब तक सच में हम जीवन को जीते ही नहीं हैं। निंदामि का अर्थ है, मन के ऊपर जो-जो संस्कार आ गए हैं, उन्हें पोंछ देना। उसका पहला कदम है, शान्त होकर के बैठें और याद करें कि आज दिन भर में आपने क्या-क्या किया। उसके बाद में उसका अनुभव करें कि हां, जब ऐसा-ऐसा हुआ तो मेरे मन के भीतर क्या भावनाएं उठीं, क्या विचार आए, क्या प्रतिक्रियाएं हुईं, उस समय मेरे मन में क्या रिएक्शन आया। देखें। जब आप निष्पक्ष बनकर गहराई से उसे देखेंगे तो अपने आप वह छूट जाएगा।

होश पूर्वक स्मरण

हम पुरानी घटनाओं को याद करते हैं, लेकिन बेहोशीपूर्वक याद करते हैं। निंदामि का अर्थ है with awareness. होशपूर्वक देखें। उन घटनाओं को ऐसे देखें जैसे वे किसी दूसरे के जीवन में हो रही हैं। जैसे कोई फिल्म चल रही है और मैं दूर से बैठा-बैठा देख रहा हूं। ऐसे न देखें जैसे मेरे साथ ही हो रहा है। ऐसे देखें जैसे किसी दूसरे के साथ हो रहा है।

आपने कोई श्रेष्ठ कार्य किया है तो अपनी प्रशंसा में मत डूब जाएं। आपने कोई गलत कार्य किया है तो अपने को धिक्कारते हुए ही न रह जाएं। न प्रशंसा करें और न निंदा करें, केवल देखें। यह है ऑब्जर्वेशन, निंदामि।

दुख–रेचन का उपाय : आँसू

यह है पहला चरण। इससे क्या होगा, यह एक घटना के माध्यम से समझिए।

एक महिला प्रोफेसर थी। वह दर्शन-शात्र पढ़ाती थी। बहुत विदुषी थी। दर्शन-शात्र पढ़ाते-पढ़ाते उसका प्रभाव उसके जीवन पर भी उतरने लगा था। बहुत-सी बातें उसने सीखी थीं, कि जीवन नश्वर है, शरीर आज है कल नहीं है, सबको एक दिन मर जाना है, वगैरा-वगैरा ...।

एक बार जब वह अपनी क्लास में पढ़ा रही थी तो अचानक उसे समाचार मिला कि उसके पति का एक्सीडेंट में निधन हो गया है। ऐसे समाचार को सुनकर सामान्यतः होता यह है कि कुछ देर के लिए व्यक्ति के लिए समय ठहर-सा जाता है, वज्राहत-सा वह अनुभव करता है, रोता है, चिल्लाता है। उस महिला ने अपने पति की मृत्यु का समाचार सुना, एकाएक उसे तीव्र झटका लगा, उसका अन्तरंग रोदन से भर गया, पर उसने प्रगटतः अपने को पूर्णतः सामान्य बनाए रखा। इतना ही नहीं, क्षण भर में ही उसने अपने को समझा लिया कि जीवन के साथ मृत्यु का अनिवार्य सम्बंध है। मृत्यु अनिवार्य है तो उसके आने पर क्यों रोना।

वह महिला शान्त बनी रही। एक आंसू उसकी आंख से न छलका। ऐसे विकट समय में भी उसे सामान्य देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। लोगों ने कहा, कितनी मजबूत महिला है, क्या कहना उसका, एक आंसू भी आंख से नहीं बहाया, स्त्री हो तो ऐसी हो।

अक्सर हम रोने को अपनी कमजोरी मानते हैं। यह गलत है। रोना कोई कमजोरी नहीं है। रोना बड़ी स्वाभाविक क्रिया है। जैसे हंसना एक क्रिया है, वैसे ही रोना भी एक क्रिया है। उसमें बुरा क्या है? कमजोर होना क्या है?

इसलिए आप देखना स्त्री तो फिर भी रो देती है, पुरुष रो नहीं पाते हैं। पुरुष समझता है कि रोना कमजोरी का लक्षण है, और वह स्वयं को कमजोर दिखाना नहीं चाहता। इसलिए रोना पुरुष के लिए कठिन है। उसमें उसका अहंकार बाधा बन जाता है। स्त्री रो देती है। पुरुष की तुलना में उसका अहंकार क्षणिक होता है। इसलिए वह छोटी-छोटी बातों पर भी रो देती है। उससे उसको एक लाभ यह होता है कि उसके भीतर आर्त्त भावों का संग्रह नहीं होता है। आंसुओं के बहाव के साथ वह दुख के भावों का रेचन करती रहती है।

मनोविज्ञान कहता है कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष ज्यादा पागल होते हैं। हार्ट-अटैक भी स्त्री की तुलना में पुरुषों को अधिक आते हैं। क्यों? क्योंकि पागल होना अथवा हार्ट-अटैक होना इन दोनों बीमारियों का प्रमुख कारण मनुष्य के भावों से है। भावों के तीव्र आघात से हार्ट-अटैक आता है और उसी से अनेक मानसिक रोग उत्पन्न होते जाते हैं। व्यक्ति पागल भी हो जाता है।

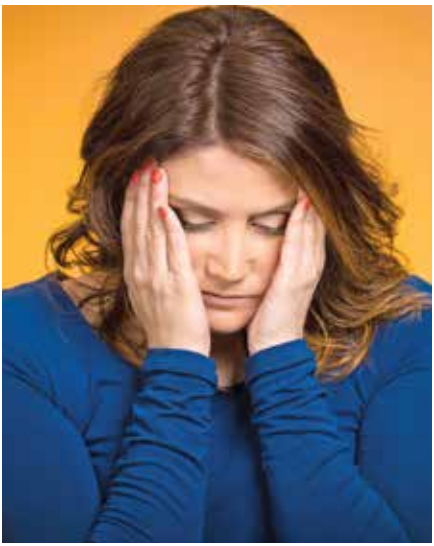

उस महिला ने अपने दुख को भीतर ही दबा लिया। उसने अपनी दिनचर्या को भी सामान्य बनाए रखा। एक महीना बीता, दो महीने

बीते, और छह महीने बीत गए। तब उसे हिस्टिरिया के दौरे पड़ने शुरू हो गए। डॉक्टर उससे पूछते कि उसे कोई तनाव तो नहीं है। वह इन्कार कर देती। डॉक्टर उसकी बीमारी का कारण खोज नहीं पाए। बहुत-सी दवाएं भी लीं पर लाभ न हुआ।

फिर एक बार उस महिला की मुलाकात एक संत से हुई। उसने संत से कहा, महाराज! मुझे अक्सर हिस्टिरिया के दौरे पड़ते हैं। बहुत उपचार मैंने करवाए, पर लाभ न हुआ। आप संत हैं, आशीर्वाद दीजिए जिससे मैं व्याधि-मुक्त हो सकूं।

संत ने सुना। चिंतन किया थोड़ी देर। फिर बोले, मैं तुम्हारे जीवन के बारे में जानना चाहता हूं। क्या तुम अपने बारे में सब सच-सच बताने को राजी हो?

महिला ने कहा, मैं सब कुछ सच बताने को राजी हूं। और में सदैव सच ही बोलती हूं।

संत ने पूछा, 'तुम क्या करती हो?'

'मैं प्रोफेसर हूं। दर्शन-शास्त्र पढ़ाती हूं।'

'घर में और कौन-कौन हैं?'

'कोई नहीं है। अकेली हूं।'

'शादी नहीं की?'

'की थी शादी। मेरे पति थे। पर ...।'

'पर?'

'पर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई।'

'कब?'

'आठ महीने हो गए हैं।'

बड़ा कष्ट हुआ होगा तुम्हें?'

'हां महाराज! पर मृत्यु तो सनातन सत्य है। उसे टाला थोड़े ही जा सकता है। ऐसा मानकर उस दुर्घटना को एक साधारण-सी घटना मानकर मैंने भुला दिया।'

'क्या तुम्हें रोना नहीं आया?'

'मुझे रोना तो आया, पर मैं रोई नहीं। मैंने स्वयं को समझा लिया कि आखिर रोना तो नादानी है। रोना कोई उपाय थोड़े ही है।

संत को सूत्र मिल गया। बड़े अनुभवी थे वह संत। उन्होंने कहा, बैठो मेरे पास, मैं तुम्हारा उपचार करता हूं।

संत ने उस महिला को ध्यान कराया, उसे शांत, सहज और गहन समाधि में ले गए। फिर कहा, अब याद करो वह क्षण जब पहली बार तुम्हे मैसेज मिला था कि तुम्हारे पति नहीं रहे, तब तुम्हें कैसा लगा था। महिला ने उस क्षण को गहराई में जाकर के याद किया। और उसे आश्चर्य हुआ कि उसका हृदय जोर-जोर से धड़क उठा, उसका अन्तरंग पिघल-पिघलकर आंसूओं के रूप मे बहने लगा। उसने आंसू रोकने चाहे। पर सन्त ने कहा, रोकना मत अपने को। बहने दो आंसुओं को। रोना कुछ बुरा नहीं है। खूब रोओ।

वह महिला रोती गई, रोती गई। याद करती गई और रोती गई। करीब-करीब उसका यह रोदन तीन से चार दिन तक चलता रहा।

आठ दिन बाद वह महिला सामान्य हो गई। उसे दौरे पड़ने बन्द हो गए। उसने स्वयं को एक दम निर्भार अनुभव किया। वह संत के पास गई। उसने कहा, महाराज! जो डॉक्टर न कर सके वह आपने कर दिया। अब मैं एकदम निर्भार हूं, शांत हूं। पर एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही है कि आखिर रोने से यह सब कैसे हो गया।

संत ने कहा, अब तक तुम हंसती थी, उस हंसने का भी कोई अर्थ न था। अब तुम रोने के बाद सच में हंस पाओगी। और कहते हैं कि उसके बाद फिर उसे कभी हिस्टिरिया के अटैक नहीं आए।

यह एक केस स्टडी है। यह घटित घटना है। काल्पनिक नहीं है। यह है निंदामि, फिर से पीछे लौटकर देखना। आप देखना, दिन में कई बार ऐसा हो जाता है, किसी ने कुछ कह दिया और आपको क्रोध भी आता है, पर आप कह देते हो कि छोड़ो। उस समय तो कहते हो कि जाने दो, छोड़ो, लेकिन वह छूटता कहाँ है? कहीं-न-कहीं चुभन रह जाती है। और वह चुभन धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते एक दिन बहुत बड़ा रोग बनकर बाहर आती है।

निरपेक्ष आत्मदर्शन

तो क्यों हम उस चुभन को बड़ा रोग बनने दें। वह जब शुरू हुई तब ही उसे निःसत्व बना दो। जब उसकी शुरुआत हुई तभी उसे समाप्त कर दो। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा, सुबह से शाम तक,

एक-एक घटना को गइराई से देखे। देखों कि मैंने उस समय क्या किया। केवल देखो, न प्रशंसा करो और न निन्दा करो। निष्पक्ष भाव से देखो, Be a witness of your own life and situations. साक्षीभाव से देखो। आप देखना बहुत कुछ पिघल करके भीतर से चला जाएगा।

भगवान् ने तो और भी आगे की बात कही, सुबह और शाम क्यों? जिस समय भी तुम तनाव में जाओ उसी समय स्वयं को देखों। जैसे इस क्षण आपको गुस्सा आ रहा है, ऐसे में एक क्षण के लिए रूको, एक गहरा श्वास लो और छोड़ो। फिर गुस्से को देखो। आप चकित होंगे यह देखकर कि तत्क्षण गुस्सा विलिन हो जाएगा। वह टिक नहीं पाएगा। लेकिन हम क्या करते हैं, उस क्षण प्रगट हुए गुस्से को आगे और आगे तक ले जाते हैं। फिर वह इतना बड़ा रूप ले लेता है कि वह एक संस्कार बनकर हमारे मन पर अंकित हो जाता है। एक वैर का सम्बंध बनकर वह हमारे भीतर कार्मण शरीर में प्रवेश कर जाता है।

स्मरण रखें, जब भी आपके जीवन में, जिस क्षण भी आपके मन में असंतुलन आए, असमाधान आए, तनाव आए, उसी क्षण रुको, एक गहरा श्वास लें और गहरा श्वास छोड़ें। आधा तनाव तो उसी क्षण चला जाएगा, और शेष आधा शाम को बैठोगे तो उस समय चला जाएगा। लेकिन हम ऐसा नहीं करते। हम कहते हैं कि बाद में देखेंगे। और बाद में वह मल्टीप्लाई होता चला जाता है। बढ़ता चला जाता है, बढ़ता चला जाता है।

निंदामि प्रथम सूत्र है आत्मस्नान का। निंदामि अर्थात् कैसे हम स्वयं की ओर लौटें। प्रतिदिन आप निदांमि का अभ्यास करें। प्रतिदिन सोने से पूर्व पांच मिनट का समय निकालें। पांच मिनट से ही शुरु करें। शांत होकर के बैठें, एक गहरा श्वास लें और एक गहरा श्वास छोड़ें। देखें कि आज सुबह से शाम तक मैंने क्या-क्या किया, बस

केवल देखें। और आप देखना क्या चमत्कार होता है। आप महसूस करेंगे, आपको नींद में सपने कम आएंगे। क्योंकि सपने का मतलब ही यह है कि दिन में हम जो करते हैं, उसकी Impressions, छाप हमारे मन के ऊपर छूट जाती हैं, वही रात में सपनों के रूप में हमको दिखाई देती हैं। वस्तुतः दिन में जो इच्छाएं अधूरी रह जाती हैं, वे रात सपनों में पूरी होती हैं। दिन में किसी से मिलना चाहते थे, नहीं मिल पाए, रात सपने में मजे से मिल लेते हैं। आपका मन ऐसा ही करता है।

अगर आप निंदामि की साधना करके सोएं तो देखना आपकी नींद गहरी हो जाएगी। सपने कम आएंगे। यह आप स्वयं अनुभव करके देखना। पांच मिनट से शुरू करें। करते-करते दस मिनट तक पहुंचें, पंद्रह मिनट तक पहुंचें, बीस मिनट तक पहुंचें। गहराई से केवल देखें।

यह पहला चरण है।

द्वितीय सूत्र है गरिहामि/Confession

दूसरा चरण है, गरिहामि। अब आपने अपने आपको देख लिया। आत्म-अवलोकन से अन्तरात्मा स्वच्छ बन जाता है। लेकिन फिर भी

कुछ बाह्य मैल आत्मा पर चिपका रह जाता है। भगवान् ने कहा, विशिष्ट स्वच्छता के लिए गरिहामि की साधना करें। गरिहामि का मतलब क्या है? गरिहामि का मतलब है, किसी ऐसे व्यक्ति को खोजो जो समुद्र के समान है, जिसके भीतर बात जाए और बाहर न आए। और उस व्यक्ति के पास जाकर के सब कुछ बता दो। सब कुछ कह दो कि मैंने यह-यह किया, मैं यहां-यहां फिसला, यहां-यहां तनाव में घिरा।

यह प्रथा आज भी क्रिश्चियन में मौजूद है। शुरू में यह प्रथा सभी धर्मों में थी। लेकिन क्रिश्चियन लोगों ने आज भी इस प्रथा को जीवित रखा है। उसे वे नाम देते हैं confession. उनके चर्च मे एक बॉक्स होता है, कन्फैशन बॉक्स। जाली के पीछे फादर बैठते हैं। लोग आते हैं कन्फैशन के लिए। निःसंकोच हृदय से वे अपनी बात कह देते हैं। उन्हें सुनकर फादर उनको नियमानुसार उपाय बता देते हैं।

यह बहुत ही सुन्दर बात है। कन्फैशन से, गरिहामि से क्या होता है? उससे आपके भीतर जो हीन भावना है उससे आप बाहर आ जाते हैं।

गरिहामि : हीनता–मुक्ति का उपाय

हमने एक शिविर लिया था पिछले दिनों। हुआ यह कि एक भाई बिना किसी को कहे, चुपके से शिविर को मध्य में ही छोड़कर भाग गया। वह चला तो गया पर उसके मन में एक दोष आ गया,

हीन भावना आ गई कि मैंने बहुत बुरा किया। जब उसने बाद में शिविरार्थियों के अनुभव सुने तो उसके भीतर एक आग जल गई, गहरे पश्चात्ताप से वह भर गया।

तब उसने मुझे लिखकर के दिया, कृपा आप मुझे क्षमा कर दीजिए। मुझसे बड़ी भूल हो गई। मुझे क्षमा नहीं मिलेगी तो मेरे हृदय में चुभन बनी रहेगी, मेरा पर्युषण खराब हो जाएगा।

एक्सरे–आइज़ सद्गुरु

मैं समझता हूं कि इस प्रकार कन्फैशन से, गरिहामि से वह हल्का हो गया। अन्यथा उसका मन भार से मुक्त न हो पाता, और उसके मन में यही चलता रहता कि मैं बुरा हूं, मैं बुरा हूं।

गरिहामि आपको हीन भावना से मुक्त करता है। उसके लिए किसी सद्गुरु को खोजना पड़ेगा। हां, यदि ऐसे-वैसे व्यक्ति के सामने गरिहामि करोगे तो भटक जाओगे। उसके लिए सद्गरु होना अनिवार्य है। एक ऐसा व्यक्ति जो आपके कर्म को नहीं देखता है बल्कि आपको देखता है। इसे पुनः समझें, जो आपके कर्म को नहीं देखता है बल्कि आपको देखता है। जो लहरों को नहीं देखता, बल्कि लहरों के नीचे रहे हुए समुद्र को देखना है। अर्थात् अगर आपने चोरी की, तो वह चोरी करना आपका कर्म है, आपने अपनी काया से किया, मन से किया, वाणी से किया। लेकिन आपने काया, वाणी और मन से जो चोरी की उसका मतलब यह नहीं है कि आप प्रमानेंटली चोर बन गए। नहीं, ऐसा नहीं है। हां, उस क्षण आप चोर थे, लेकिन इस क्षण आप चोर नहीं हैं। जो ऐसा देख पाए उसके सामने जाकर के गरिहामि करें। जो एक एकसरे आइज़, एक गहरी दृष्टि को लिए हुए है, जो कर्मों से परे कर्त्ता को देख सके, ऐसे व्यक्ति के समक्ष गरिहामि करें।

आपने गुस्सा किया इसका अर्थ यह नहीं है कि आप गुस्सा बन

गए। एक क्षण आपके भीतर गुस्सा आया, आपने गुस्सा कर लिया और गुस्सा विदा हो गया। दूसरे क्षण आपके भीतर गुस्सा नहीं है, तब आप गुस्सा नहीं हो। जो आपको यह याद दिलाए, प्रतिक्षण वह स्मृति आपके भीतर जगाए कि जो आपने किया है वह आप नहीं हो, वह आपके द्वारा हुआ है, लेकिन आप उससे अलग हो। You are different from you actions. तुम अपने कर्मों से अलग हो। कर्म आपके द्वारा हुए हैं पर आप स्वयं कर्म नहीं हो।

खिड़की से आकाश दिखाई दे रहा है लेकिन खिड़की ही आकाश नहीं है। द्वार से शहर दिखाई दे रहा है, पर द्वार शहर नहीं है। यह तो देखने का एक साधन है। आपके द्वारा एक छोटा-सा कर्म हुआ, आपने झूठ बोल दिया, लेकिन आपने उस झूठ को स्वीकार कर लिया तो आप उस झूठ से मुक्त हो गए।

इस प्रकार जो आपको हीन भावना से बाहर लेकर के आए वह है सद्गुरु। उसके पास आकर के गरिहामि करें। सब कुछ कह दें। एक बार हमें जिंदगी में अपनी पूरी जिंदगी को देखना चाहिए। बचपन

से लेकर के वर्तमान तक। किसी सद्गुरु के पास जाकर सब कह देना चाहिए। देखना आप, आपका एक नया जन्म हो जाएगा।

यह मैं किताबों का पढ़ा नहीं कह रहा हूं, यह मैंने स्वयं किया है। इसलिए मुझे पता है कि सच में इससे जीवन में क्या हो सकता है। तो यह है घर को लौटने का रास्ता। तो भीतर के घर को तो हम आ गए अब समय हो गया है आपके बनाए हुए छोटे-से घर में जाने का। आंखें बंद करें और मंगल का, उत्तम का स्मरण करें।

तनाव मुक्ति की साधना: कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग :

काय का अर्थ है शरीर
और उत्सर्ग का अर्थ है
छोड़ देना।
शरीर को छोड़ देना
यह कायोत्सर्ग का
शाब्दिक अर्थ है। लेकिन शरीर
को छोड़कर क्या मरण का वरण कर लें
हम? नहीं जी नहीं। इसका अर्थ यहाँ भिन्न है।
कायोत्सर्ग का अर्थ है, शरीर के साथ हमारी जो
एकरूपता है, कि मैं ही शरीर हूँ और शरीर ही मैं
हूँ, इस भाव को छोड़ देना। कायोत्सर्ग के क्षण में
आप शरीर से ऊपर उठ जाते हैं। शरीर से
ही ऊपर उठ जाते हैं तो समस्त
सम्बन्धों और समस्त
ममत्वों से भी मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि शरीर
ही तो समस्त ममत्वों का मूल है। शरीर का ममत्व छूटते
ही हम समस्त ममत्वों से मुक्त हो जाते हैं।

5

तनाव मुक्ति की साधना : कायोत्सर्ग

उर्वशी में छिपी उर्वशी

एक पौराणिक कथा से मैं आज अपने वक्तव्य की शुरुआत करूंगा।

एक बार देवलोक की नृत्यांगना उर्वशी ने इन्द्र महाराज से कहा, देवराज! मैं यहां रहते-रहते ऊब गई हूं, आए दिन का नृत्य, देवताओं की वही रोज-रोज की प्रशंसा, वही स्वर्ग, सब कुछ वही का वही। यहां कुछ भी तो नया नहीं है। मैं परिवर्तन चाहती हूं। कुछ नया चाहती हूं। देव तो सब मेरे प्रशंसक हो गए हैं। उन सबको मैंने वश में कर लिया है। उनकी प्रशंसा मेरे भीतर अब कोई रोमांच पैदा नहीं कर पाती है। मैं चाहती हूं कि पृथ्वी पर जाऊं और पृथ्वी के प्राणियों को अपने नृत्य से मंत्रमुग्ध बनाऊं। उससे मुझे नवीन रोमांच मिलेगा, मुझे नया सुख मिलेगा।

उर्वशी की प्रार्थना में प्रार्थना का भाव गौण और अहंकार का भाव प्रमुख था। इन्द्र ने उसके अहंकार को पहचानते हुए कहा, उर्वशी! तुम कहती हो कि सब देवता तुम्हारे वश हो गए हैं, यह तुम्हारा मिथ्याभिमान है। ठीक है, तुमने बहुत-से देवताओं को वश में कर लिया है, उनकी प्रशंसा को भी पा लिया है परन्तु अभी भी कुछ देवपुरुष हैं जो तुम्हारे वश में नहीं हैं।

उर्वशी ने कहा, महाराज! ऐसा नहीं हो सकता है। अगर वे पुरुष हैं तो उन पर मेरा अधिकार है। वे मेरे वश में हैं।

इन्द्र ने कहा, उर्वशी! वे पुरुष ही नहीं हैं बल्कि महापुरुष हैं। उन पर तुम्हारे रूप और नृत्य का कोई प्रभाव नहीं है। तुम उन्हें वश में नहीं कर सकती हो। उर्वशी ने कहा, अगर वे पुरुष हैं तो मैं उन्हें वश कर लूंगी। बुलाइए उन्हें आप। मैं अपने कथन को प्रमाणित करके बता दूंगी।

तीन महापुरुष थे-कच्छ, कुकच्छ और कर्दम। इन्द्र ने इन तीन महापुरुषों के पास आमंत्रण भेजा। इन्द्र का संदेश लेकर देवता उन महर्षियों के पास पहुंचे और उन्हें उर्वशी का नृत्य देखने के लिए आमंत्रित किया। इन्द्र का आमंत्रण पाकर ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और बोले, देवराज ने हमें बुलाया है तो हम अवश्य आएंगे। क्योंकि आज तक हमने बन्दर का नृत्य देखा है, भालू का नृत्य देखा है, मोर का नृत्य देखा है, और भी अनेक प्राणियों को नाचते हुए देखा है। परन्तु आज तब हमने किसी स्त्री का नृत्य नहीं देखा है। उर्वशी की बहुत प्रशंसाएं हमने सुनी हैं कि वह सब देवों को वश कर लेती है। हम उत्सुक हैं उस उर्वशी को देखने के लिए जो सभी को अपने वश में कर लेती है। हम देखना चाहते हैं कि आखिर क्या आकर्षण है उर्वशी में जो वह सभी के भीतर आकर्षण जगा देती है।

समय सुनिश्चित कर दिया गया। आखिर सुनिश्चित समय पर वे तीनों ऋषि देव सभा में उपस्थित हुए। महर्षि कच्छ की दाढ़ी ग्रीवा तक थी, उन्होंने एक अधोवस्त्र धारण किया हुआ था। महर्षि कुकच्छ की दाढ़ी नाभी तक थी, उन्होंने एक कोपीन धारण किया था। महर्षि कदर्म की दाढ़ी घुटनों तक उतर आई थी, इसलिए उन्होंने वस्त्र को अनुपयोगी माना और वे निर्वस्त्र ही सभा में उपस्थित हुए।

देवराज इन्द्र ने ऋषियों का स्वागत किया और उन्हें बैठने के लिए आसन दिए। तीनों ऋषि बैठ गए। उर्वशी सभा में उपस्थित हुई। नृत्य प्रारंभ करने से पूर्व उर्वशी ने अपने विशिष्ट अतिथियों को प्रणाम किया और कहा, ऋषि-प्रवर! मैं नृत्य करते-करते अपने शरीर से एक-एक वस्त्र गिराती जाऊंगी, क्या ऐसा करने के लिए मुझे आपकी आज्ञा है?

महर्षि कर्दम ने कहा, उर्वशी! इसमें आज्ञा लेने की क्या बात है? इस ब्रह्माण्ड में असंख्य-असंख्य प्राणी हैं। केवल देव और मनुष्य ही तो हैं जो वस्त्र धारण करते हैं और तो कोई प्राणी वस्त्र धारण नहीं करता है। सब निर्वस्त्र रहते हैं। फिर तुम भी निर्वस्त्र रहो तो इसमें दुविधा जैसी क्या बात हो सकती है।

उर्वशी ने नृत्य प्रारंभ किया। जैसे-जैसे नृत्य में गहराई आती गई वैसे-वैसे देवगण झूमने लगे! नृत्य के एक निश्चित शिखर पर पहुंच कर उर्वशी के वस्त्र गिराते ही कच्छ ने अपनी आंखे मूंद लीं। वे अपने मन

पर वश न रख सके। आंख बंद कर लेने का सीधा-सा अर्थ कि कच्छ अब आगे देखने में असमर्थ थे।

उर्वशी इन्द्र की ओर देखकर मुस्कुराई कि उसने पहले ऋषि को अपने वश में कर लिया है। इन्द्र थोड़ा झेंप गए। पर अभी दो ऋषि और थे जो उर्वशी के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर थे। इन्द्र को उन पर विश्वास था कि वे उर्वशी से परास्त नहीं होंगें। उन्होंने इंगित किया कि वह अपना नृत्य जारी रखे।

दोगुणे उत्साह में भरकर उर्वशी ने अपने नृत्य को नए-नए आयाम दिए। फिर उसने अपना दूसरा वस्त्र भी गिरा दिया। इस बार कुकच्छ परास्त हो गए। उन्होंने अपनी आंखे मूंद ली।

उर्वशी के हर्ष का पार न था। उसने गर्विल नेत्रों से इन्द्र की ओर देखा और मुस्कुराई। उसके देखने में स्पष्ट भाव-स्वर था कि तुम्हारे दूसरे ऋषि भी होश खो बैठे हैं।

इन्द्र थोड़ा और संकुचाए। पर अब भी एक ऋषि शेष थे, जिन पर इन्द्र को भरोसा था। उन्होंने उर्वशी को नृत्य जारी रखने के लिए संकेत किया।

उर्वशी का उत्साह आसमान का स्पर्श कर रहा थ। उसने अपने नृत्य को ऊंचे और ऊंचे पहुचाया। नृत्य के जितने भी पक्ष, जितने भी तल और जितने भी शिखर हो सकते हैं, समस्त कोणों को उसने छू लिया। देवसभा में ऐसा समां कभी न बंधा था। समय मानो उर्वशी के नुपूरों से गति कर रहा था। नृत्य को उच्चतम शिखरों पर पहुंचाकर उर्वशी ने अपने अंतिम वस्त्र को भी गिरा दिया और वह निष्पंद बनकर खड़ी रह गई। उसकी दृषि महर्षि कर्दम पर टिकी हुई थी।

महर्षि कर्दम शांत और प्रशांत मुद्रा में बैठे उर्वशी को देख रहे हैं। काम का कोई कण उनके नैन-कोरों पर नहीं तैरा है। उर्वशी सहम गई। उसके अमर जीवन का यह प्रथम क्षण था जब उसने एक पुरुष को अपने पर निरासक्त देखा था।

कर्दम ने न तो अपनी आंखे बंद की और न उर्वशी की प्रशंसा की। उर्वशी को निष्पंद खड़ी देखकर वे बोले, उर्वशी! शेष वस्त्रों को भी गिरा दो।

नारदजी खड़े हुए और बोले, महर्षि! अब उर्वशी के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है।

कर्दम बोले, पर जो दिखाई पड़ रहा है, इसमें तो कुछ भी विलक्षणता नहीं है। जो है इसे भी हटाया जाए।

नारदजी बोले, यह तो उर्वशी की चमड़ी है।

कर्दम बोले, तो उसे भी गिराया जाए। मैं देखना चाहता हूं कि उसके नीचे क्या है।

नारद जी ने कहा, महाराज! चमड़ी को नहीं हटाया जा सकता है। स्पष्ट है कि चमड़ी के नीचे हड्डी है, मांस है, रक्त है। और कुछ भी नहीं है।

कर्दम बोले, फिर हमें यहां क्यों बुलाया गया है? हमें तो कहा गया था कि उर्वशी में कुछ विलक्षण है, कुछ ऐसा है कि वह सबको मोहित बना लेती है। हड्डी, रक्त और मांस ही है तो उसमें कौन विलक्षणता है? हम तो उर्वशी में छिपी विलक्षण उर्वशी को देखने आए थे। हड्डी, रक्त और मांस में कहाँ कुछ देखने जैसा है। अनावश्यक ही हमें यहां बुलाकर हमारा समय व्यर्थ किया गया।

कर्दम का प्रश्न है कि उर्वशी में उर्वशी कहाँ है। वे कहते हैं कि उर्वशी में उर्वशी कहाँ है यह मुझे दिखाओ। यदि यही हड्डी, मांस और मज्जा की उर्वशी है तो उसमें उर्वशी की क्या विलक्षणता है? ये सब तो प्रत्येक प्राणी के शरीर में हैं। इसमें क्या विशेष बात है? हमें क्या देखने के लिए यहां बुलाया गया था?

कर्दम का प्रश्न हम भी अपने आप से करें। आपका नाम अमित

है, तो उस अमित में अमित कहाँ पर है? आप में आप कहाँ पर है? मैं में मैं कहाँ पर है? यही है मूलभूत प्रश्न। इसी प्रश्न के समाधान पर समस्त धर्मों और दर्शनों की आधारशिला टिकी हुई है।

कायोत्सर्ग – आत्मदर्शन का सूत्र

मैं में मैं कहाँ पर है, आप में आप कहाँ पर हैं, उर्वशी में उर्वशी कहाँ पर है? मुझ में, आप में और सब में जो मूलतत्व है, उस मूलतत्व से परिचित होने के लिए जो आधारभूत सूत्र है वह है कायोत्सर्ग। वह विधि हे जिससे आप अपने स्वरूप तक की यात्रा करते हैं। कायोत्सर्ग वह राजमार्ग है जिस पर यात्रा करके आप अपने आप तक पहुंचते हैं।

स्मरण रखें, बीज को वृक्ष तक की यात्रा करने के लिए आवश्यक है कि बीज टूटे। बीज के टूटने पर ही उसमें से अंकुर निकलेगा और फिर आगे वह वृक्ष बनेगा। वह एक बीज पर्याप्त है सारी पृथ्वी को हरा-भरा करने के लिए। क्योंकि बीज से वृक्ष प्रगट होगा और वृक्ष से हजारों बीज खिलेंगे। हजारों बीजों से हजारों वृक्ष जन्म लेंगे। एक नन्हे-से बीज में क्षमता है कि वह पूरी पृथ्वी को वृक्षों से भर सकता है, हरियाली से भर

सकता है। पर कब? जब वह बीज माटी में छिपकर अपने खोल से मुक्ति पाए, अपने गिर्द जो व्यर्थ है उससे स्वतंत्र बने।

बीज को आप तोड़ेंगे तो आपको बीज के भीतर न कोई कोंपल मिलेगी, न फूल मिलेंगे और न वृक्ष मिलेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह सब कुछ बीज में नहीं है। यह सब कुछ बीज में निहीत है। पर उसके लिए जरूरी है बीज का नियमतः विकास हो। प्रकृति की गोद में प्रवेश करके अपनी यात्रा को वह जारी रखे। क्रमशः खोल से मुक्त हो और प्रकृति के थपेड़ों को अपने ऊपर झेले। तभी वह वृक्ष बनेगा।

कायोत्सर्ग : तनाव मुक्ति का उपाय

हमने भी अपने आस-पास एक कवच बनाकर के रखा है। बड़ा मजबूत है यह कवच। इसी कवच के कारण हमारे भीतर जो है वह खिल नहीं पाता है, बाहर नहीं आ पाता है। क्या है वह कवच? क्या है वह आवरण? वह कवच है तनाव, वह आवरण है तनाव। हम तनाव के आवरण में सदैव घिरे रहते हैं। हम दबे हुए हैं कहीं पर।

छोटा बच्चा है। आप देखते हैं कि उसके चेहरे पर ताजगी है, आंखों में चमक है। लेकिन धीरे-धीरे वह बड़ा होता है, स्कूल में जाता है। और बड़ा होता है, कॉलेज में जाता है। और बड़ा होता है, नौकरी या व्यवसाय करता है। जैसे-जैस वह बड़ा होता जाता है, जैसे-जैसे वह परिपक्व बनता जाता है, उसके आस-पास तनाव का आवरण सुदृढ़ बनता चला जाता है। उसका चेहरा धीरे-धीरे मुरझाने लगता है।

कहने को तो हम कहते हैं कि Progress हो रही है, लेकिन सच में Regress हो रही है। क्योंकि तनाव बढ़ता जा रहा है। इस तनाव के आवरण को हटाने का जो काम करता है वह कायोत्सर्ग।

शायद कायोत्सर्ग का ऐसा फलितार्थ आपने सोचा भी न होगा। क्योंकि अक्सर जब कोई कायोत्सर्ग करता है तो उसे लगता हे कि यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जो प्रतिक्रमण अथवा सामायिक लेते हुए की जाती है, शेष जीवन के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। अक्सर लोग सोचते हैं कि कायोत्सर्ग करेंगे तो पुण्य बंधेगा, कि परमात्मा प्रसन्न हो जाएगा, और बात समाप्त। लेकिन ऐसा नहीं है। प्रभु ने जो भी बताया है वह जीवन के साथ जोड़ दिया है। कायोत्सर्ग भी जीवन से जुड़ा हुआ सूत्र है। वह हमारे जीवन से जुड़े तनाव को तोड़ने का उपाय है।

क्या है तनाव? What is tension? कभी आपने सोचा इस पर कि आखिर तनाव है क्या? आप अक्सर कहते हो कि आज मैं तनाव में हूं। मुझे disturb मत करो। लेकिन यह तनाव है क्या? इस तनाव को हमें समझना है सर्वप्रथम। इसे समझ लेने के बाद ही आगे की बात शुरू हो पाएगी।

जब भी आप तनाव में होते हैं तो आप अकड़ जाते हैं। आपके हाथों में, पांवों में, चेहरे पर और पूरे शरीर में एक अकड़न और जकड़न आ जाती है। आपकी तरलता खो जाती है। आपका ताजापन विदा हो जाता है। आप अकड़ जाते हो। यह अकड़न आती है तनाव से।

पकड़ से पनपता है तनाव

यह तनाव आता कहाँ से है? यह तनाव कहीं बाहर से नहीं आता है। यह हमारे भीतर से ही प्रगट होता है। जैसे कि आपको मुट्ठी बंद करनी है तो हाथ में कुछ तनाव उत्पन्न करना पड़ेगा, कुछ

ताकत लगानी पड़ेगी। यदि बंद मुट्ठी को खोलना है तो आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। बस हाथ के पीछे तो तनाव पैदा किया है उस तनाव को ढीला छोड़ देना होगा और मुट्ठी अपने आप खुल जाएगी।

स्पष्ट है कि जहां-जहां हम कुछ बांधना चाहते हैं, जहां-जहां हम कुछ पकड़ना चाहते हैं, वहां-वहां तनाव आ जाता है। हम धन को पकड़ते हैं, परिवार को पकड़ते हैं, अन्य कुछ को पकड़ते हैं, जहां भी पकड़ अस्तित्व में आती है वहीं तनाव भी आ जाता है। पकड़ तनाव का मूल है, तनाव का गर्भ है।

इच्छा जागना कोई बहुत बुरा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में इच्छाएं जगती हैं। उसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। हम मनुष्य हैं तो इच्छाएं तो जागेंगी ही। लोग अक्सर कहते हैं कि इच्छाएं नहीं जागनी चाहिएं। मैं ऐसा नहीं कहूंगा। मैं कहूंगा कि इच्छाएं जगें तो जगने दीजिए पर यह आग्रह मत बनाइए कि मेरी इच्छाएं पूरी होनी ही चाहिएं। जब यह आग्रह जागता है तब संघर्ष की शुरूआत हो जाती है।

इच्छा जगे, हम उसे पूरा करने के लिए प्रयत्न करें। वह पूरी हो जाए तब भी ठीक है, पूरी न हो तब भी ठीक है। यदि ऐसा हो तो फिर कोई तनाव न होगा। तनाव कब आता है? जब हम कहते हैं कि यह इच्छा तो पूरी होनी ही चाहिए। फिर आप बड़ी मेहनत करते हो, बड़ी मेहनत करते हो इच्छा को पूरी करने के लिए। पर आप उसे पूरा करने में असफल हो जाते हो। इच्छा पूरी नहीं हो पाती है। इच्छा पूरी नहीं होती है तो फिर निराशा आती है। निराशा आते-आते व्यक्ति तनाव में चला जाता है, डिप्रेशन और फरस्ट्रेशन में जाता है। फिर वह कहता है कि क्या करें, बहुत डिप्रेशन आ गया।

शुरुआत कहाँ से हुई डिप्रेशन की? शुरुआत कहाँ से हुई फरस्ट्रेशन की? पकड़ से। आपने पकड़कर रखा है कि यह ऐसा होना ही चाहिए।

हां? अगर आपने यह सोचा है कि कल सुबह सूरज पूरब दिशा से ही उगना चाहिए, तो आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। क्योंकि सूरज पूरब में से ही उगता है। लेकिन यदि आप पकड़ के बैठ जाओ कि जब तक सूरज पश्चिम दिशा में से नहीं उगेगा तब तक मैं खाना नहीं खाऊंगा, तो फिर आप खाना खांए या न खाएं, सूरज तो पूरब से ही उगेगा, क्योंकि वही उसका नियम है। आपकी चाह से वह अपने नियम में परिवर्तन नहीं करेगा।

तनाव की शुरुआत कहाँ से होती है? जब आप व्यर्थ की इच्छाओं को पकड़कर बैठ जाते हो, वहां से तनाव की शुरुआत होती है। देखना आप, लोग छोटी-छोटी बातों पर तनाव-ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी-ऐसी बातों पर तनावग्रस्त हो जाते हैं जिनका कोई मूल्य नहीं है। छोटी-छोटी बातों पर लोग संघर्षशील बन जाते हैं। छोटी-छोटी बातें... यह किताब यहां क्यों रखी, वहां नहीं रख सकते थे, और क्लेश हो जाएगा....। यह चप्पल ऊपर क्यों रखी, नीचे नहीं रख सकते थे, और तनाव शुरु हो जाता है। छोटी-छोटी बातों को हम पकड़ लेते हैं कि ऐसा क्यों, वैसा क्यों।

व्यर्थ की पकड़ से तनाव आता है। सार्थक की पकड़ से तनाव नहीं आता है। लेकिन हम अपने कार्यों को देखें, अपनी पकड़ की पड़ताल करें तो हम पाएंगे कि हमारे समस्त कार्य और समस्त इच्छाएं व्यर्थ की पकड़ हैं। हमारा पूरा श्रम अज्ञान-श्रम है।

एक नन्हीं-सी बालिका थी। वह धूप में आती, मुट्ठी बंद करती और कमरे में जाकर मुट्ठी खोल देती। बार-बार वह ऐसा कर रही थी। उसके पिता ने पूछा, बेटा! यह क्या कर रही हो? लड़की ने कहा, पिताजी! कमरे में बहुत अंधेरा है। मैं बाहर से प्रकाश को मुट्ठी में बंद करके कमरे में ला रही हूं।

बालिका के पिता हंसे। आप भी हंस सकते हैं उस बालिका की नादानी पर कि क्या प्रकाश को मुट्ठी में बंद किया जा सकता है। पर सच में हम भी तो यही करते हैं।

जवान बने रहने का जज्बा

विगत दिनों में मैंने स्वर्णिम वार्द्धक्य पर चर्चा की थी। वार्द्धक्य शरीर का गुणधर्म है। शरीर एक दिन अवश्यमेव जर्जरित होता है। वार्द्धक्य को आने से रोका नहीं जा सकता। परन्तु कोई चाहता नहीं है कि वह बूढ़ा हो। प्रत्येक व्यक्ति जवान ही बने रहना चाहता है। बुढ़ापा आता है, तो भी व्यक्ति उसे छिपाने का प्रयास करना है। बाल पकने लगते हैं, पर खिजाब से बाल काले रखने का प्रयास करता है। यह सब क्या है? यह जवानी से चिपके रहने का भाव है। व्यक्ति पकड़ करके रखना चाहता है कि वह जवान रहे।

एक बहन जी शिविर कर रही थी। धम्म-सेवक ने उसे कहा, आंटी! इधर बैठ जाइए। उस बहन को बहुत बुरा लगा। धम्म-सेवक को समझ न पड़ी कि वह नाराज क्यों हो गई। उसने उसकी नाराजगी का कारण पूछा। उसने कहा, आप बहन जी कह सकते हो। क्या मैं तुम्हें आंटी दिखाई देती हूं?

ऐसे ही एक बार स्वाध्याय की क्लास में एक बहन जी को माता जी कहा गया तो वह नाराज हो गई। आखिर यह नाराजगी कहाँ से आती है? बहनों को आंटी और माताजी जैसे शब्दों से चिढ़ क्यों आती है? क्योंकि वे समझती हैं कि आंटी और माताजी बुजुर्ग महिलाओं के संबोधन हैं। बुजुर्ग वे स्वयं को दिखाना नहीं चाहती हैं। उनके बुढ़ापे को परिभाषित करने वाले शब्द भी उन्हें अप्रिय लगते हैं।

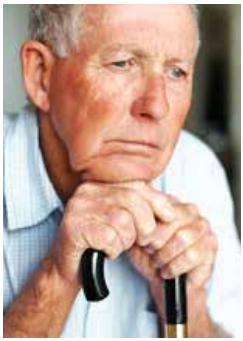

निरंतर परिवर्तन : शरीर का गुणधर्म

स्मरण रखें, शरीर तो बदलेगा, और बदलना उसका स्वभाव है। पर हमारी पकड़ जारी रहती है, कि कैसे मेरी उम्र कम लगे। कितने ही उपाय करते हैं हम। पर कितने ही उपाय करो, शरीर तो बदलने वाला है और बदलेगा। लेकिन हम पकड़ते हैं। इसी व्यर्थ की पकड़ से जीवन में तनाव बढ़ता है। यदि हम व्यर्थ की पकड़ से मुक्त हो सकें तो तनाव से भी मुक्त हो सकते हैं। उसके लिए हमें यथार्थ को जानना होगा। जीवन की सच्चाइयों को स्वीकार करना होगा। जीवन के

सच को स्वीकार करने से हम परिवर्तन के क्षण में भी तनाव से मुक्त रहेंगे। परिवर्तन आएगा पर वह हमें दुखित न बना पाएगा। क्योंकि उसके लिए हम तैयार हैं। उस यथार्थ को हम स्वीकार कर चुके हैं।

पर हम स्वीकार नहीं कर पाते हैं। हम चाहते हैं कि व्यवस्थाएं यथारूप रहें, व्यवस्थाएं वैसी ही रहें जैसा हमने चाहा है। इसी चाहत से तनाव आता है। क्योंकि मनोनुकूल व्यवस्थाएं कदापि नहीं रहती हैं। निरंतर बदलना उनका स्वभाव हैं। व्यवस्थाओं पर पकड़ जितनी सघन होगी, हमारा तनाव भी उतना ही सघन हो जाएगा।

यथार्थ को जानें! स्वीकारें!

एक उदाहरण से इसे समझें। बच्चे का जन्म होता है। जन्म से पहले बच्चा और मां एक ही होते हैं। एक ही शरीर में दोनों हैं। फिर बच्चे का जन्म होता है। तो मां को क्या लगता है? मेरा बेटा। और उसको केवल यही नहीं लगता है कि मेरा बेटा, बल्कि उसको लगता है कि मैं ही बेटा हूं और बेटा ही मैं हूं। एकरूपता है दोनों के बीच में। बच्चे को कोई दुख होता है तो मां को बहुत दुख होता है। पिता को थोड़ा कम दुख होता है। क्योंकि पिता और बच्चे के बीच में एक Distance है। पिता होना एक विश्वास है लेकिन मां होना एक अनुभव है। पिता होना अनुभव नहीं है।

मां अनुभव को जीकर मां बनती है। उसके शरीर से ही उसके पुत्र का निर्माण होता है। इसलिए वह पुत्र में ही स्वत्व को देखती है। बच्चे के जन्म लेने के पश्चात् भी उसे लगता है कि बच्चा और मैं एक ही हैं।

फिर धीर-धीर उम्र के साथ, प्रकृति के साथ बच्चा बड़ा होता है। अब बच्चा खेलने की शुरुआत करता है। अब बच्चा मां की गोद में कभी आता है और कभी नहीं आता है। कभी यहां खेलता है, फिर

गोद में आता है, फिर जाता है, फिर आता है। पर मां कहती है, मेरा बेटा। फिर धीरे-धीरे प्रकृति और समय काम करते हैं। बेटा और बड़ा होता है। अब बेटे के लिए खिलौने महत्वपूर्ण हो जाते हैं। अब वह खिलौनों से खेलता है, बाहर मित्र हैं, गेंद है, मैदान है, टी.वी. है, धीरे-धीरे उसका विश्व बड़ा होता चला जाता है। अब बेटे के लिए केवल मां ही नहीं रही है। मां के साथ में मित्र भी आ गए हैं, मां के साथ में खिलौने भी आ गए, मां के साथ में मैदान भी आ गया, क्रिकेट भी आ गई, फुटबाल भी आ गई। लेकिन अभी भी मां को लगता है कि मेरा बेटा।

धीरे-धीरे प्रकृति और काम करती है, समय और आगे बढ़ता है, बच्चा स्कूल में जाता है, पढ़ाई की शुरुआत करता है। अब बच्चे को पढ़ना भी है, लिखना भी है, एग्जाम भी है, अच्छे मार्क्स भी उसे लाने हैं, अब उसका जगत काफी फैल गया है। कभी-कभी उसे मां की भी याद आती है जब बहुत भूख लगती है तो। कभी-कभी मां की याद आती है जब उसे रोना आता है तो। अन्यथा वह खेलता है, कूदता है, मस्त रहता है। मां की याद जल्दी नहीं आती है। लेकिन मां को लगता है मेरा बेटा।

धीरे-धीरे और उम्र बढ़ती है। पढ़ाई पूरी करने के बाद बेटा वापस आता है। फिर एक दिन उसके जीवन में किसी दूसरी स्त्री का प्रवेश होता है। उसकी शादी हो जाती है। फिर एक दिन मां जोर से चिल्लाकर कहती है, यह बेटा कल तो मेरी सुनता था, आज न जाने इसे क्या हो गया है।

रूस में कहावत है कि एक मां पच्चीस वर्ष मेहनत करके अपने बेटे को बुद्धिमान बनाती है, और पच्चीस वर्ष के पश्चात् उसके जीवन में कोई दूसरी स्त्री आती है और वह पांच मिनट में उसे बुद्धू बना देती है।

जरा सोचिए कि क्या पच्चीस वर्ष के पश्चात् बेटा अचानक बदल गया? नहीं, वह अकस्मात् नहीं बढ़ता है। उसके बदलने की शुरूआत तो उसी क्षण से हो गई थी जब उसका जन्म हुआ था। पहले मां के साथ था। जन्म लेते ही वह मां से अलग हो गया। एक से दो हो गए। फिर धीरे-धीरे दूरी बढ़ती गई। और यह होना प्रकृति का नियम है, सहज है, स्वाभाविक है। लेकिन मां को लगता है कि ऐसा क्यों हुआ। क्योंकि वह अभी भी उसी भ्रम में जी रही है कि बेटा और वह एक ही हैं।

यह सच है कि वह उसका बेटा है। पर अपनी पच्चीस वर्ष की यात्रा में बेटे ने भी बहुत कुछ संचित किया है। बहुत कुछ ऐसा है जिसके साथ वह बंटा है। उस बहुत कुछ को मां की आंख पकड़ नहीं पाती है। उस परिवर्तन को, उस गति को मां देख नहीं पाती है। इसीलिए एक प्वाइंट पर जाकर वह तनावग्रस्त हो जाती है कि उसका बेटा उसे धोखा दे रहा है, कि उसका बेटा किसी और का हो गया है। वस्तुतः परिवर्तन के सच को देखने और जानने वाला ही पंडित है।

पण्डित कौन?

भगवान् महावीर ने कहा -

खणं जाणाहि पंडिए।

जो क्षण को पहचान लेता है वही पंडित है। क्षण सतत परिवर्तनशील है। जो क्षण के सच को पढ़ लेता है, हृदय की तख्ती पर

लिखकर टांग लेता है क्षण के सच को, वह पंडित है। वह कभी दुखी नहीं हो सकता है।

पर परिवर्तन को हम पकड़ नहीं पाते हैं। परिवर्तन को हम पढ़ नहीं पाते हैं। इसीलिए परिवर्तन के परिणाम पर हम दुखी हो जाते हैं।

जैसे कि आपके बाल हैं, नाखून हैं, प्रतिक्षण बढ़ रहे हैं। लेकिन जब आप पंद्रह दिन बाद देखोगे तो कहोगे, अरे इतने बड़े नाखून हो गए। तो क्या नाखून एक ही दिन में बड़े हो गए हैं। नहीं, एक ही दिन में बड़े नहीं हुए हैं। प्रतिक्षण वे बड़े हुए हैं। परन्तु समय के उस बारीक परिवर्तन को हम पकड़ नहीं पाते हैं पर मनोज्ञ क्षणों, संबंधों और व्यवस्थाओं को पकड़कर हम बैठ जाते हैं कि वे सदैव मनोज्ञ ही बने रहें। यही पकड़ तनाव का कारण है।

आपका कोई मित्र है। आज उसके साथ आपकी घनिष्ठ मैत्री है। बड़ी Close friendship है। तो आप सोचते हैं कि यह Close friendship सदा-सदा ऐसी ही बनी रहे। लेकिन फिर कोई कारण उपस्थित होता है और दो मित्र अलग हो जाते हैं। फिर आप कहते हैं कि उसने मुझे धोखा दिया। लेकिन आप यह समझ नहीं पाते हैं कि आज जो घनिष्ठता है, जरूरी नहीं है कि वह जीवन भर ऐसी ही बनी रहे। बदलने का नाम ही जीवन है, परिवर्तन ही जीवन है। परिवर्तन जीवन का नियम है। लेकिन हम पकड़कर रखते हैं और वहीं से तनाव की शुरुआत होती है।

जैसे आप किसी यात्रा पर जा रहे हैं। मैंने एक उदाहरण दिया था कि स्लीपर जगह पर नहीं थी कि तनाव आया। गाड़ी ठीक से नहीं चल रही है, मन में तनाव आया। अब यह सब कुछ होना तो जीवन का एक अभिन्न अंग है। कभी स्लीपर ठिकाने पर होगी, कभी ठिकाने

पर नहीं होगी। कभी लाभ होगा, कभी नुकसान होगा। यह सब कुछ तो चलने ही वाला है। लेकिन हम चाहते हैं कि जैसे आज लाभ हुआ, कल भी लाभ ही होना चाहिए। जैसे आज किसी ने मेरी मदद की, कल भी उसे मेरी मदद करनी ही चाहिए। हमारी यही अपेक्षा और हमारी यही पकड़ हमारे भीतर तनाव को जन्म देती है।

कायोत्सर्ग का अंत:स्वरूप

इस तनाव से हम बाहर कैसे आएं। तनाव को जन्म तो दे दिया, पर इस व्यर्थ की पकड़ से हम बाहर कैसे आएं? श्रवण मात्र से तनाव से मुक्त तो नहीं हो जाएंगे। तो हम क्या करें उसके लिए? उसके लिए क्या अभ्यास है? क्या व्यवस्था है? क्या सूत्र है?

उसके लिए सूत्र है, कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग यानि क्या? कायोत्सर्ग एक पारिभाषिक शब्द है। काय का अर्थ है शरीर और उत्सर्ग का अर्थ है छोड़ देना। शरीर को छोड़ देना यह कायोत्यर्ग का शाब्दिक अर्थ है। लेकिन शरीर को छोड़कर क्या मरण का वरण कर लें हम? नहीं जी नहीं। इसका अर्थ यहां भिन्न है। कायोत्सर्ग का अर्थ है, शरीर के साथ हमारी जो एकरूपता है, कि मैं ही शरीर हूं और शरीर ही मैं हूं, इस भाव को छोड़ देना।

कायोत्सर्ग के क्षण में आप शरीर के ऊपर उठ जाते हैं। शरीर से ही ऊपर उठ जाते हैं तो समस्त संबंधों और समस्त ममत्वों से भी

मुक्त हो जाते हैं। क्योंकि शरीर ही तो समस्त ममत्वों का मूल है। शरीर का ममत्व छूटते ही हम समस्त ममत्वों से मुक्त हो जाते हैं।

कायोत्सर्ग मधुरतम सूत्र है। पर कायोत्सर्ग को जीना थोड़ा कठिन है। क्योंकि हमारी पकड़ इतनी सघनतम है कि जहां भी वह जरा सी शिथिल होती है हम पीड़ित बन जाते हैं। समस्त सूत्र पढ़ने की बात मात्र बात बनकर रह जाती है।

पर–उपदेश कुशलता

जैसे आपका कोई मित्र आपको मिला। उदास है वह। उसकी उदासी का कारण आपने पूछा। उसने कहा, मित्र! मेरे पास एक बहुत बढ़िया घड़ी थी, वह खो गई है। उसी से मैं उदास हूं।

फिर आप उसे समझाते हो। आपने बहुत प्रवचन सुने हैं न! आप समझाते हो उसे कि अरे भाई! घड़ी का क्या है, आनी-जानी वस्तु है। आज चली गई, कल नई आ जाएगी। इसमें उदास बनने की क्या जरूरत है। अगर उदास हो जाओगे तो क्या घड़ी वापिस आ जाएगी? उदास नहीं होते हैं। छोड़ो इसे। मुस्कुराना सीखो।

अब संयोग ऐसा हुआ कि दूसरे दिन आपकी घड़ी भी खो गई। फिर क्या होता है? फिर वह उपदेश कब तक याद आता है? कि घड़ी तो आती है और जाती है, कि घड़ी का तो कहना क्या, कि वह तो नश्वर है, कि मुस्कुराना सीखो!... अगर ऐसा कोई आपको समझाने लगे तो आप कहेंगे, ऐ! चुप रह। ऐसा भाषण मैंने बहुत बार सुना है। पहले घड़ी ला के दे।

स्मरण रखें, घड़ी खोने से कोई उदास नहीं होता है। उदास तब होता है, जब प्रश्न आता है कि मेरी घड़ी खो गई। किसी की घड़ी खो जाती है तो हम बढ़िया-सा उपदेश देते हैं, समझाते हैं, सिखाते हैं लेकिन जब मेरी घड़ी खो जाती है तो सारा उपदेश, सारे शास्त्र सब एक ओर, पहले घड़ी लाओ, बाकी फिर देखेंगे। शेष सब एक ओर रह जाता है।

एक भाई था। उधर शिविर चल रहा था। शिविर में एक भाई के पैर में बड़ा दर्द हो रहा था। तो वह भाई उसे समझाने लगा कि देखो भाई! पैरों में दर्द तो होगा ही न। दर्द नहीं होगा तो साधना कैसे होगी? तप कैसे होगा? किस तरह आप शरीर से ऊपर उठोगे .... । बहुत बढ़िया समझा रहा था। मोक्ष तक की बातें कहकर उसे दर्द से पार जाने की बातें कह रहा था।

मैं देख रहा था। उसका समझाना मुझे भी अच्छा लगा। पर कुछ ही दिन बाद वह भाई भी शिविर में बैठा। उसे भी दर्द होने लगा। बड़ा दर्द होने लगा। वह मेरे पास आया। बोला, मैं नहीं बैठ सकता हूं, बड़ा दर्द हो रहा है।

मैंने कहा, भाई! वह मोक्ष? वह तप? वह साधना? उसके लिए दर्द को तो सहन करना ही पड़ेगा न! आप ही तो चार दिन पहले उस भाई को यह सब समझा रहे थे।

उसने कहा, देखो महाराज! मोक्ष बाद में देखेंगे। पहले दर्द दूर करो। क्योंकि किसको दर्द हो रहा है? मुझे दर्द हो रहा है। जब किसी और को दर्द होता है तो किताब की बातें फिलोसॉफी, सब याद आता है। जब मुझे दर्द होता है तो मोझ-वोक्ष सब बाद में चले जाएंगे, जो याद रहेगा वह होगा अपना दर्द, अपनी पीड़ा।

यह जो मेरे-पन का भाव है यही पकड़ है। कायोत्सर्ग का अर्थ है इस मेरे-पन से मुक्त हो जाना।

ममत्व का निकटतम केन्द्र : शरीर

कहने को तो हम कहते हैं कि शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है, आदि-आदि। पर जैसे की यहां से बाहर जाते हैं और कुत्ता पीछे पड़ता है तो फिर देखिए कौन भागता है। डर लगता है कि कहीं काट न ले। बड़ा दर्द हो जाएगा। तब यह ख्याल नहीं आता कि

शरीर नश्वर है। क्यों? क्योंकि अनुभव तो हमें यही होता है कि मैं ही शरीर हूं, I am the body. यह जो अनुभव है, इस अनुभव से बाहर आने का नाम है कायोत्सर्ग। मैं शरीर हूं या मैं शरीर नहीं हूं, देखें एक बार गहराई से।

आप सोच सकते हैं कि शरीर के बंधन को छोड़ने से तनाव कैसे दूर होगा। आप देखें कि शरीर में तनाव की शुरुआत कहाँ से और कैसे होती है। सबसे निकट आपके कौन है? आप देखेंगे तो पता चलेगा कि मां भी दूर है, पत्नी भी दूर है, भाई भी दूर है, धन भी दूर है, घर भी दूर है, आपके जो निकटतम है वह है आपका शरीर। उस शरीर से ही समस्त संबंध शुरू होते हैं। शरीर है तो भाई है, शरीर है तो घर है, शरीर है तो मां है, पिता है, खाना है, रहना है, शरीर है तो सब कुछ है। शरीर नहीं है तो कुछ भी नहीं है। तो आपके जो निकटतम है वह है आपका अपना शरीर। जब आप शरीर की पकड़ को छोड़ते हो तो शेष जो पकड़ है, व्यर्थ पर जो पकड़ है वह अपने आप छूटती चली जाती है।

निरपेक्ष दर्शन : दर्द मुक्ति का उपाय

शरीर की पकड़ को हम कैसे छोड़ें? आइए एक घटना के माध्यम से इसके लिए सूत्र की तलाश करें।

अमेरीका की एक घटना है। एक कवि थे। एक बार वे अपनी पत्नी के साथ किसी लम्बी यात्रा पर थे। बहुत लम्बी यात्रा थी। मार्ग। में उस कवि को सिर में बड़ा दर्द उठा। बड़ा भंयकर दर्द हुआ। यात्रा जहां से चल रही थी वहां जंगल था। पास में कोई गांव और शहर भी नहीं था। दर्द इतना बढ़ा कि ड्राइव करना मुश्किल हो गया। गाड़ी सड़क के किनारे रोक दी गई।

संयोग से कवि की पत्नी यात्रा में पढ़ने के लिए एक पुस्तक अपने साथ ले आई थी। वह रास्ते भर पुस्तक को पढ़ती रही थी। उस पुस्तक में ध्यान के विभिन्न प्रयोग बताए गए थे। उसमें एक प्रयोग था, कि जब भी कभी तुम्हें शरीर के किसी हिस्से में दर्द हो तो जागरूक होकर के उस दर्द को देखो। दर्द को गहराई से देखें कि What is the pain. क्या है यह दर्द। जागरूकतापूर्वक दर्द को देखने से दर्द का विलय हो जाता है।

पुस्तक का वह उल्लेख पत्नी ने पति से कहा। पति को लगा कि यह सब व्यर्थ बकवास है। पर पत्नी के दबाव को मानकर वह कवि ध्यान के लिए तैयार हो गया। वह शांत होकर बैठ गया और दर्द को देखने लगा। गहराई से देखता गया, देखता गया। शुरु-शुरु में

तो दर्द बढ़ता गया, इतना बढ़ा, इतना बढ़ा कि लगने लगा सिर अभी फट जाएगा। लेकिन एक प्वाइंट आया कि दर्द को देखते-देखते दर्द पिघलने लगा। पिघलते-पिघलते केवल तरंगे रह गईं। कुछ ही क्षण बाद उसने महसूस किया कि सच में दर्द चला गया है।

उस कवि ने जो अनुभव किया वह अनुभव आप भी कर सकते हो। वह प्रयोग आप भी कर सकते हो। यह कायोत्सर्ग का प्रयोग है। कायोत्सर्ग मतलब अपनी काया को ऐसे देखना जैसे आप किसी दूसरे के शरीर को देख रहे हो।

कल्पना कीजिए कि आपके पैरों में बड़ा दर्द हो रहा है। उस समय आप शांत होकर पैरों में होने वाले दर्द को देखने की शुरुआत करें। होता यह है कि जब-जब भी दर्द होता है आपके मन में पहला ही विचार यह आता है कि दर्द दूर हो जाए। सर्वप्रथम आप उस दर्द को दूर करने का विचार करते हो कि यह कैसे दूर हो, यह कैसे दूर हो। पर यह जीवन का मूलभूत नियम है कि जिसको आप धिक्कार करते हो वह और गहरा होता चला जाता है।

निषेध बनता है आमंत्रण

एक प्रयोग से आप इसे समझ सकते हैं। जैसे कि आपको कह दिया जाए कि आंखों को बंद करें और अमुक-अमुक मंत्र का जाप करें। जाप बड़ा आसान है। जाप करते हुए आप जो चाहें विचार मन में आने देना, जो चाहें याद करना, पर भूलकर भी बंदर को याद मत करना। जो चाहो करना, अमेरीका को याद करना, पाकिस्तान को याद करना, पत्नी को याद करना, धन को याद करना। पर बंदर को याद मत करना।

फिर देखिए क्या होता है। आपके भीतर और कुछ आए न आए, बंदर अवश्य आएगा। क्योंकि जिसे आप धिक्कारना चाहते हो वह पुनः पुनः आपके पास आता है। जिसे आप इन्कार करते हो वह पुनः

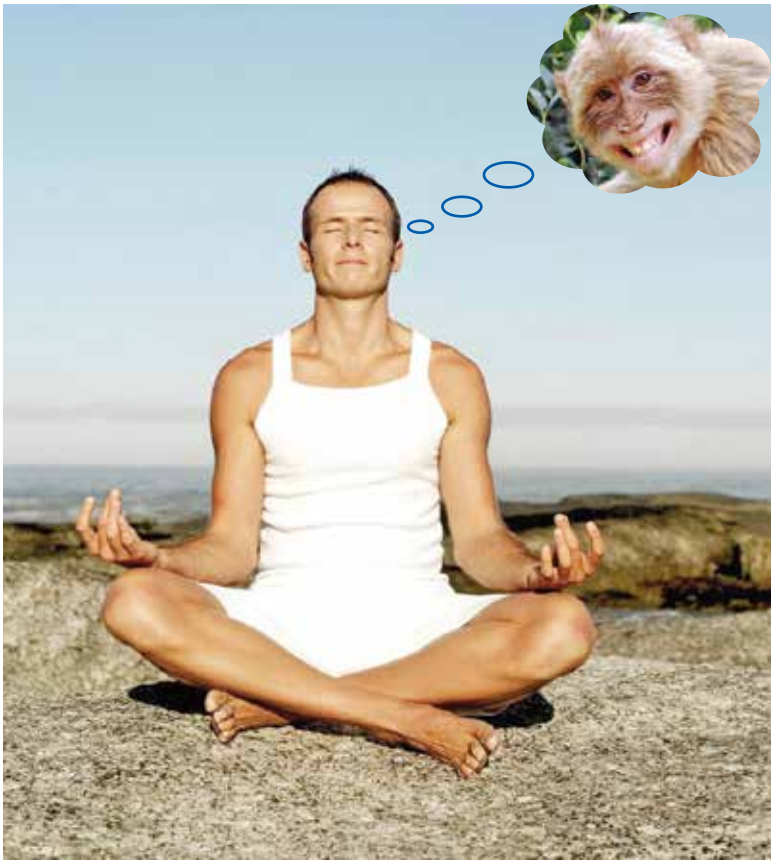

पुनः आपका स्वीकार बन जाता है। जिसे स्मृति से पोंछना चाहते हो वह पुनः पुनः स्मृति पर ताजा है।

इसलिए मैं कहता हूं कि दर्द आए तो उससे दुश्मन जैसा व्यवहार मत कीजिए। आक्रामक बनकर मत दुत्कारिए उसे। वह आपके शरीर का गुणधर्म है। उससे मित्र की तरह व्यवहार कीजिए। शांत बनकर उसे देखिए। प्रेमपूर्ण बनकर उसे देखिए। देखते जाइए, देखते जाइए, आप चमत्कृत हो जाएंगे कि आपके देखते-देखते दर्द विदा हो जाएगा।

यह मैं पढ़ा हुआ और सुना हुआ नहीं कह रहा हूं। यह मेरा

अपना अनुभव है। जब आप प्रेमपूर्ण बनकर दर्द को देखते हो तो वह स्वयंमेव विदा हो जाता है। क्योंकि दर्द का मतलब ही यह है कि आपकी प्राणशक्ति कहीं पर अटक गई है। प्राणशक्ति का जो बहाव है वह कहीं पर बाधित हो रहा है। जब आप प्रेमपूर्ण बनकर उसको देखने लगते हो तो वह अवरोध दूर हो जाता है, प्राणशक्ति का प्रवाह सुचारु हो जाता है और दर्द दूर हो जाता है।

कायोत्सर्ग का प्रथम चरण है-शरीर के अनुभवों को इस प्रकार देखो जैसे कि वह किसी और का शरीर है। कभी भूख लगे तो दो मिनिट जरा शांत होकर के बैठो और देखो कि क्या है भूख। भूख यानि क्या होता है। कहते तो हो बचपन से कि भूख लगी है लेकिन भूख के क्षण में होता क्या है शरीर में ? क्या यहां कुछ जलता है? क्या यहां कुछ गर्म लगता है? वस्तुतः होता क्या है भूख के क्षण में? आप ठीक से भूख को देख सको तो देखते-देखते एक क्षण आएगा कि आप भूख से अलग हो जाओगे। भूख से ऊपर उठ जाओगे। यही उपवास है।

उपवास का अर्थ भूख को सहन करना नहीं है। उपवास का अर्थ है भूख से अलग हो जाना कि भूख मैं नहीं हूं और मैं भूख नहीं हूं। मैं भूख से विलग हूं।

कभी प्यास लगे बड़े जोर से। शांत बनकर देखिए कि क्या है प्यास। उस देखने में ही आप प्यास से अलग हो जाओगे।

सम्यक् आलंबन

यह कायोत्सर्ग का पहला चरण है। प्रथम सूत्र है। कायोत्सर्ग का दूसरा सूत्र क्या है? दूसरे सूत्र को समझने के लिए हम काशी नरेश के जीवन की एक घटना को देखेंगे। एक बार काशी नरेश का बहुत बड़ा ऑप्रेशन होने वाला था। काशीनरेश को गीता पर बड़ी श्रद्धा थी। वह पूर्ण श्रद्धा भाव से गीता का अध्ययन करता था। जब ऑप्रेशन की

बात आई तो डॉक्टरों ने उससे कहा, हम पहले आपको बेहोश करेंगे उसके बाद ऑप्रेशन करेंगे। काशीनरेश ने कहा, नहीं मुझे तुम बेहोश नहीं करोगे। मुझे तुम गीता पढ़ने दो। मैं गीता पढ़ता रहूंगा और तुम अपना काम करते रहो। जब तुम्हारा कार्य पूरा हो जाए, मुझे बता देना, मैं गीता पढ़ना बंद कर दूंगा।

उसने सच में वैसा किया। डॉक्टरों ने उसका ऑप्रेशन किया और वे गीता पढ़ते रहे। उन्हें कोई दर्द न हुआ। डॉक्टर हैरान रह गए। उन्होंने काशीनरेश से पूछा कि उनका शरीर चीरा गया तो क्या उन्हें दर्द नहीं हुआ।

काशीनरेश ने कहा, गीता को पढ़ते हुए मैं देहदशा से अतीत हो जाता हूं। गीता में मैं इतना तन्मय बन जाता हूं कि गीता ही शेष रहती है, मैं अशेष हो जाता हूं। शरीर में रहकर भी मैं शरीर से अलग हो जाता हूं। फिर शरीर पर घटने वाली घटनाएं मुझे विचलित नहीं बना पाती हैं।

यह कायोत्सर्ग का दूसरा सूत्र है कि कोई ऐसा आलम्बन खोजो, सम्यक् आलम्बन खोजो जो आपको सम्यक् समाधि में लेकर जाए। फिर वह आलम्बन श्वासोच्छ्वास भी हो सकता है, नमस्कार मंत्र भी हो सकता है, किसी सद्गुरु का स्मरण भी हो सकता है। जिसके प्रति आपके हृदय में गहरी श्रद्धा, विश्वास और समर्पण हो वही आपके लिए आलम्बन बन सकता है।

किसी ऐसे आलम्बन की खोज करो और प्रतिदिन उस आलम्बन पर अपने चित्त को स्थिर करके समाधि का अभ्यास करो। निरंतर अभ्यास से आप अनुभव करोगे कि शरीर की पकड़ शिथिल बन रही है। आप शरीर से ऊपर उठ रहे हो। जब आप शरीर की पकड़ से ऊपर उठने लगोगे तो शरीर से जो भी संबंधित है, आपका परिवार, समाज आदि, इन सबसे आप मुक्त होने लगोगे।

निष्काम कर्म पूजा है

किसी ने मुझसे पूछा है कि आप कहते हो कि आसक्ति नहीं होनी चाहिए, पकड़ नहीं होनी चाहिए। अगर आसक्ति नहीं होगी तो हम काम कैसे कर पाएंगे? क्योंकि हम काम ही इसलिए करते हैं कि हमारे भीतर आसक्ति है, धन हम आसक्ति के कारण कमाते हैं। आसक्ति ही चली गई तो हम अकर्मण्य हो जाएंगे। फिर परिवार कौन चलाएगा? और क्यों चलाएगा? आसक्ति है तभी तो हम परिवार का पालन करते हैं, दौड़-भाग करते हैं। धन कमाते हैं।

मैंने कहा, आसक्ति है इसलिए आप बहुत भाग-दौड़ करके भी और बहुत धन अर्जित करके भी शांत नहीं बन पाते हो। आसक्त बनकर जब आप काम करते हैं तो आपका रस काम में कम और फल पर अधिक रहता है। जब आप काम को अपना दायित्व मानकर करेंगे, काम को अपना आनन्द मानकर करेंगे तो आपका काम ही आपका फल बन जाएगा। काम करते हुए ही आप फल का रस पा लेंगे। फल मिले न मिले पर आप फल पा लेंगे। और काम करेंगे तो फल आएगा ही। आसक्ति-पूर्वक जब आप कर्म करते हैं तो आपका कर्म नीरस बन जाता है, भार बन जाता है। अनासक्त बनकर जब आप कर्म करते हैं तो आपका कर्म ही आपकी पूजा बन जाता है, आपका पुजापा बन जाता है।

अनासक्ति का अर्थ यह नहीं है कि आप हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाओ। अनासक्ति का अर्थ है, काम करो, पर फल में मत उलझो। काम को ही फल की तरह ग्रहण करो। आप देखेंगे कि आपके जीवन में मोक्ष के फूल खिल आएंगे, आपके अहर्निश प्रार्थना से पूर्ण बन जाएंगे, आपका जीवन ही मंदिर बन जाएगा, देह ही देहरा हो जाएगा।

कायोत्सर्ग का प्रथम सूत्र है, अपने शरीर के अनुभवों को ऐसे

देखें जैसे वह किसी दूसरे का शरीर है। दूसरा सूत्र-किसी ऐसी चीज का स्मरण करें, किसी ऐसे आलम्बन पर अपने मन को लगाएं जिसमें आपका मन पूरी तरह से डूब जाए। जहां पर आपकी श्रद्धा है, भक्ति है, विश्वास है, आप देखना वहां आपका मन रमणशील बन जाएगा। इन दोनों बातों से धीर-धीरे शरीर की जो आप पर पकड़ है वह छूटती चली जाएगी। और जैसे-जैसे शरीर की पकड़ शिथिल होती जाएगी वैसे-वैसे शरीर स्वस्थ बनता चला जाएगा। यह बड़ा चमत्कार होगा कि जितनी पकड़ छूटती जाएगी शरीर उतना ही स्वस्थ बनता चला जाएगा।

कैस होगा यह, इसे वैज्ञानिक पहलू से समझिए। मैं जार्ज सिल्वा की पुस्तक पढ़ रहा था। उसने लिखा है, हमारे शरीर के भीतर Auto healing सिस्टम है। अर्थात् हमारे शरीर के भीतर ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था है कि वह स्वयं स्वस्थ हो सकता है। पर वह स्वयं स्वस्थ इसलिए नहीं हो पाता है कि हमारे विचार उसके कार्य में बाधा डालते हैं। मन का जो लगाव है शरीर के साथ, वह शरीर को काम नहीं करने देता है। शरीर का जो Auto healing सिस्टम है, जो स्वयं स्वस्थ होने की प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया में मन बाधा डालता है। इसलिए शरीर स्वयं स्वस्थ नहीं हो पाता है।

जार्ज सिल्वा आगे कहता है, हमारे जितने भी रोग हैं, वे सभी शारीरिक नहीं हैं। अधिकांश रोग मन और शरीर के जोड़ से आते हैं। जो रोग शरीर और मन के जोड़ से आते हैं उनके लिए बाह्य उपचार खोजने पड़ते हैं। जो रोग केवल शरीर से उठते हैं, उनके लिए किसी बाह्य उपचार की आवश्यकता नहीं है। पर तभी आवश्यकता नहीं है जब आपका मन उसमें बाधा उपस्थित न करे। मन बाधाएं खड़ी करेगा तो शरीर का अंतःस्रावी उपचार बाधित बन जाएगा और बाह्य उपचार अपेक्षित बन जाएगा।

शरीर को संभालिए, पर उसे पकड़िए मत! किसी की संभाल रखना एक बात है और उसे पकड़कर बैठ जाना बिल्कुल अलग बात है। आप अपने घर की संभाल रखते हो। पर घर को पकड़कर ही आप द्वार पर बैठ जाएं तो आपके जीवन की गति खो जाएगी। आप रुग्ण कहलाएंगे। हम शरीर की संभाल नहीं रखते हैं, बल्कि शरीर को पकड़कर रखते हैं। हमारे सारे विचार और वृत्तियां शरीर के आस-पास घूमती रहती हैं।

देखिए आप, आपके जो कपड़े हैं वे शरीर से जुड़े हैं। भोजन है वह शरीर से जुड़ा है। मकान है वह शरीर से जुड़ा है। परिवार शरीर से जुड़ा है। जो भी है सब शरीर के आस-पास घूम रहा है। इस पकड़ से थोड़ा बाहर निकलिए! उसके लिए उपाय है कायोत्सर्ग।

मैंने कायोत्सर्ग के दो सूत्र आपको दिए हैं। इन पर चिंतन करें! तनाव के आवरण से मुक्त बनें! उर्वशी के भीतर जो वास्तविक उर्वशी है, आपके भीतर वस्तुतः जो आप हैं उसे प्रगट होने दें।

समय का संतुलित संयोजन

व्यक्ति अपने दिन का पच्चीस प्रतिशत समय आत्मविकास के लिए लगाए, पच्चीस प्रतिशत आजीविका के लिए लगाए, पच्चीस प्रतिशत परिवार, समाज और देश के लिए समर्पित करे तथा शेष पच्चीस प्रतिशत समय में शरीर को विश्राम दे। यह समय का सम्यक् और संतुलित संयोजन है। अगर आप समय के संतुलन का बराबर पालन करते हैं तो जीवन में आप जहां हो, घर में हो, परिवार में हो, दुकान में हो, समाज में हो, जहां भी हो, वहीं रहते हुए सुख–शान्ति और आनन्दपूर्वक जी सकते हो।

6

समय का संतुलित संयोजन

जीवन : कितना छोटा, कितना लम्बा

आज का हमारा विषय है, समय का संतुलित संयोजन। अर्थात् किस प्रकार हम अपने समय को संयोजित करें, Plan करें। । Proper planning and management of life. किस प्रकार समय का हम संयोजन करें। सबसे पहले तो हम यही समझें कि समय को व्यवस्थित रूप से संयोजित करना, Proper planning करना नितान्त आवश्यक है। क्यों आवश्यक है? जैसे आप अपने जीवन को देखें। मनुष्य की

औसत आयु आजकल क्या है? पहले सौ वर्ष थी, धीरे-धीरे अस्सी वर्ष की हुई और आजकल साठ वर्ष की आयु रह गई है। साठ वर्ष की आयु में से हमारे जीवन का एक तिहाई भाग, करीब-करीब बीस वर्ष हम निद्रा में बिता देते हैं। दिन और रात के चौबीस घंटे में से मनुष्य औसतन आठ घंटे विश्राम करता है, निद्रा लेता है। बचपन में कुछ अधिक निद्रा ली जाती है और बुढ़ापे में थोड़ी कम निद्रा ली जाती है। बुढ़ापे में निद्रा अपने से ही कम हो जाती है। इसलिए मैंने औसतन निद्रा आठ घंटे की रखी है। साठ वर्ष की आयु में से बीस वर्ष निद्रा में चले जाते हैं। शेष बचते हैं चालीस वर्ष।

जीवन-यापन के लिए मनुष्य को व्यवसाय भी करना पड़ता है। किसी को सर्विस करनी पड़ती है। जीवन-यापन के लिए, धन अर्जित करने के लिए भी मनुष्य को समय चाहिए। उसके लिए जो समुचित और सम्यक् समय अपेक्षित है वह है आठ घंटे। हालांकि आठ घंटे के व्यवसाय से व्यक्ति संतुष्ट नहीं होता है। वह अपना अधिक-से-अधिक समय

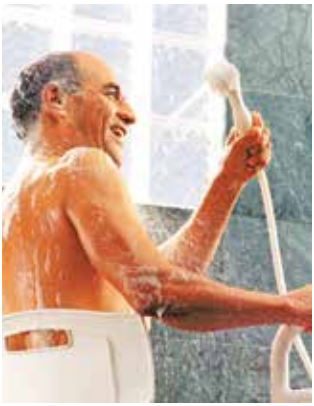

व्यवसाय में समर्पित करना चाहता है। क्योंकि धन का आकर्षण उसके मन पर छाया रहता है। वह व्यवसाय के समय में तो व्यवसाय करता ही है, शेष समय में भी व्यवसाय के गणित में ही उलझा रहता है। पर व्यवसाय के लिए जो सम्यक् समय परिमाण है, वह है आठ घंटे पर्याप्त हैं व्यवसाय में बीत जाते हैं। अर्थात आपके जीवन के बीस वर्ष व्यापार में चले जाते हैं। शेष बचे बीस वर्ष।

अब थोड़ा आगे चिन्तन को चलाइए। केवल सोना और केवल धन कमाना ही तो पर्याप्त नहीं है। दैनिक आवश्यक क्रियाएं भी हैं जिनके लिए समय चाहिए। भोजन भी करना है, स्नान भी करना है, थोड़ा टहलना भी है, अन्य अनेक देह-क्रियाएं हैं जिन्हें पूर्ण करना होता है। कम-से-कम दो घंटे इन कार्यों के लिए भी चाहिए। प्रतिदिन दो घंटे का अर्थ हो गया पांच वर्ष। आपके पांच वर्ष दैहिक आवश्यकताओं की संपूर्ति में बीत जाते हैं। शेष बचे पंद्रह वर्ष।

हमारी आयु के प्रथम के पांच वर्ष, अर्थात् बाल्यकाल के कुछ वर्ष अबोधदशा में और कुछ वर्ष खेल कूद में बीत जाते हैं। शेष बचे दस वर्ष।

जीवन में और भी अनेक बातें हैं। कुछ समय आप मनोरंजन में बिता देते हैं, मित्रों और संबंधियों से मिलने में बिता देते हैं, बातचीत और अन्य कामों में बिता देते हैं।

औसतन दो घंटे इन कार्यों में व्यतीत हो जाते हैं। अर्थात् आपके जीवन के पांच वर्ष इन कामों में चले जाते हैं। शेष बचे पांच वर्ष। और वे पांच वर्ष भी ऐसे ही बीत जाते हैं, कभी कोई बीमारी आ जाती है, पारस्परिक झगड़े हो जाते हैं, अस्पतालों और अदालतों में चक्कर लगाते हुए पांच वर्ष भी पूरे हो जाते हैं।

पूरा जीवन कैसे बीत जाता है कुछ भी पता नहीं चलता है। फिर आप कहते हो कि साठ वर्ष का लम्बा जीवन .....। लेकिन यह लम्बा जीवन कैसे बीत जाता है कुछ पता नहीं चलता है। क्यों होता है ऐसा? ऐसा इसलिए होता है कि जीवन को हमने ठीक से संयोजित नहीं किया है।

जैसे आप एक घर चलाते हैं, एक फैक्टरी चलाते हैं, तो आप Planning करते हैं कि कैसे उसे चलाना है। पचास हजार रुपए आपके पास हैं तो आप उस राशि का संयोजन करते हैं कि इतनी राशि आपको अमुक कार्य में व्यय करनी है, इतनी राशि अमुक कार्य में लगानी है। Proper planning के साथ आप चलते हैं, तभी व्यापार चलता है और तभी घर चलता है। अन्यथा घर और व्यापार चल नहीं सकता है। तो जब आप आय की Planning करते हैं, व्यय की Planning करते हैं तो समय की Planning क्यों नहीं करते हैं?

धर्म–श्रद्धा/धन–श्रद्धा

हम सदा ही सोचते हैं कि समय मिलेगा तो काम करेंगे। 'समय मिलेगा तो' यह हमारे जीवन का एक ऐसा वाक्य है जिसका हम बहुत

उपयोग करते हैं। किसी से भी आप बात कीजिए, इस वाक्य का उपयोग आपको अक्सर सुनाई देगा। उन कामों के लिए जिन्हें हम करना नहीं चाहते हैं, हम कभी समय नहीं निकाल पाते हैं। जिन कार्यों में हमारी श्रद्धा नहीं है उन कार्यों को हम टालते रहते हैं 'समय मिलेगा तो' के वाक्य की ढाल बनाकर। जिन कार्यों में हमारी रुचि है, हमारा प्रेम है जिन कामों पर, उन कामों के लिए हम समय निकाल ही लेते हैं। दूसरे जरूरी कामों को छोड़कर भी रुचि के काम के लिए हम समय खोज लेते हैं।

जब आपको ध्यान के लिए और स्वाध्याय के लिए आमंत्रित किया जाता है तो आप तत्क्षण 'समय मिलेगा तो' वाक्य की ढाल को बीच में ले आते हो। दिखाते आप ऐसा हैं कि ध्यान और स्वाध्याय पर आपकी गहन आस्था है। पर कहते यह हैं कि समय मिलेगा तो वैसा करेंगे, कि ध्यान करेंगे, कि स्वाध्याय करेंगे, कि सामायिक करेंगे।

'समय मिलेगा तो'। पर समय मिल पाता है क्या? कितना समय मिल पाता है? कब समय मिल पाता है? कभी बैठते भी हो तो आगे-पीछे की एक हजार झंझटें साथ लेकर बैठते हो। कभी प्रेरणा से परेशान बनकर, कि कभी संतों के कहे के दबाव को मानकर बैठते भी हो तो मन कहाँ बैठ पाता है? बैठते ही उठने के ख्याल में चले जाते हो। हजार काम आपको परेशान करते हैं, हजार भाव आपको दाएं-बाएं खींचते हैं, कि दुकान ठप्प हो जाएगी, कि इतना लाभ कम हो जाएगा, कि फलां काम छूट जाएगा।

क्यों? क्योंकि दुकान पर आपकी श्रद्धा है, लाभ पर आपकी श्रद्धा है, फलां काम पर आपकी श्रद्धा है। ध्यान पर आपकी श्रद्धा नहीं है। इसलिए ध्यान के लिए आपके पास समय नहीं है। समय निकालते भी हो तो हजार जाल-जंजालों में उलझे रहते हो। हजारों

जालों में उलझे रहते हो इसीलिए धर्म का, ध्यान का, स्वाध्याय का कोई सुपरिणाम आप प्राप्त नहीं कर पाते हो।

अतृप्ति–असंतुष्टि

जिन कामों पर आपकी श्रद्धा है उन कामों से क्या आपको कभी संतुष्टि मिल पाती है? दिन भर आप काम करते हैं, फिर रात में सोने के लिए बिस्तर पर लेटते हैं, तो क्या बिस्तर पर लेटते हुए आप संतुष्ट होते हैं कि आज तो सब काम पूरे हो गए? कि आप जो करना चाहते थे वह कर पाए? नहीं । रात को सोते समय लगता है कि बहुत चाहा पर अमुक कार्य तो अधूरा ही रह गया। चाहते हुए भी कर नहीं पाया। सदा ही रात को जब हम सोते हैं तो तृप्त होकर नहीं सोते हैं, अतृप्त मन से सोते हैं। कल सुबह होगी, यह करना है, वह करना है। फिर कल सुबह होगी, दोपहर होगी, फिर वही रात। और फिर वही असंतोष। यह एक दिन हो तो ठीक है, दो दिन हो तो ठीक है, प्रतिदिन यही होता है। प्रतिदिन असंतोष और असंतुष्टि से हम घिरे रहते हैं।

यह असंतोष जीवन के अन्त तक चला रहता है। साठ वर्ष का जीवन जब पूरा होता है तो उस समय भी हम असंतोष से भरे हुए होते हैं। हमें लगता है कि जो करना था वह तो हम कर ही नहीं पाए। करते रहे जीवन भर कुछ न कुछ, पर जो वस्तुतः करणीय था, वह हम कर ही नहीं पाए। ऐसा नहीं है कि हमने कुछ किया नहीं, किया बहुत, इतना किया कि वह सब न भी करते तो फर्क न पड़ता जितना किया उससे बहुत कम करके भी जीवन को ठीक से जी सकते थे, पर अहर्निश जुटे रहे। दिन-रात लगे रहे। पर जो करने आए थे, वस्तुतः जो हमारा असल कार्य था, और उस कार्य के लिए जो समुचित साधन मिले थे, वह नहीं कर पाए।

मूल की भूल

प्रस्तुत संदर्भ में पारसी पेस्टन के जीवन की एक घटना मुझे स्मरण आ रही है। एक बार उनके घर कोई मेहमान आने वाले थे। पेस्टन जी की पत्नी ने कहा देखिए जी! हमारे प्रिय मेहमान आने वाले हैं। आज हम अपने मेहमानों को शीरा खिलाएंगे। पर घर में शीरा बनाने के लिए न तो आटा है, न गुड़ है और न अन्य सामग्री है। तुम बाजार चले जाओ और आटा-गुड़ आदि सामान खरीद लाओ।

पेस्टन जी चले घर से। धुन के धनी व्यक्ति थे। बाजार में पहुंचे। सामने क्रॉकरी की दुकान थी। दुकान पर बढ़िया-बढ़िया बर्तन सजे थे, प्लेटें सजी थीं। पेस्टन जी ने सोचा, मेहमान आएंगे, उन्हें शीरा परोसा जाएगा, पर घर में प्लेटें भी तो अच्छी नहीं हैं। कुछ नई प्लेटें खरीद लेनी चाहिएं। ऐसा सोचकर उन्होंने कुछ प्लेटें खरीद लीं, साथ ही कुछ कप और चम्मच भी खरीद लिए।

तब पेस्टन जी आगे बढ़े। जमीन पर उनके कदम चल रहे थे और मस्तिष्क में विचार चल रहे थे। सोचा, शीरा तो मीठा होगा। खाली मीठा मेहमानों को क्या खिलाएंगे, थोड़ा नमकीन भी कुछ ले लिया जाए। पहुंचे नमकीन की दुकान पर। नमकीन के कुछ पैकेट्स खरीदे। फिर आगे चले। सामने शर्बत की दुकान थी। विचार आया पेस्टन जी के दिमाग में, कि कुछ पेय पदार्थ भी जरूरी है। क्यों न एक बोतल शर्बत की ले ली जाए। शर्बत की एक बोतल भी खरीद ली। तभी ख्याल आया, अरे, घर में अच्छे गिलास भी नहीं हैं। कुछ गिलास भी खरीदने जरूरी हैं। गिलास की दुकान खोजी और कुछ गिलास भी खरीद लिए। फिर आगे को चले। मन में शीरे का मन्थन चल रहा है। सोचा, खाली गुड़ शक्कर का शीरा भी कोई शीरा होता है, थोड़े ड्राई-फ्रूट्स शीरे में डाले जाने जरूरी हैं। ड्राई-फ्रूट्स की दुकान पर पहुंचे। काजू-बादाम वगैरा-वगैरा खरीदे। इस प्रकार जहां भी और जैसी भी धुन पेस्टन जी को बंधी, जमकर खरीददारी

की। सब खरीदा, इतना खरीदा कि उठाकर चलना मुश्किल हो गया, पर आटा और गुड़ खरीदना भूल गए।

बहुत सामान था। किसी तरह उठाकर पेस्टन जी घर पहुंचे। पसीना-पसीना हो गए थे। मन में बड़े अरमान थे कि पत्नी देखकर प्रसन्न हो जाएगी कि इतनी चीजें लेकर आए।

अक्सर पतियों की यह मानसिकता होती है कि उन द्वारा लाई हुई वस्तुओं को देखकर पत्नियां प्रसन्न हों, उनकी प्रशंसा करें। पेस्टन जी को भी बड़ी प्रतिक्षा थी कि पत्नी उनकी प्रशंसा करेगी। पत्नी ने सब सामान देखा, पर जिसके लिए उसने पेस्टन जी को भेजा था वह वस्तु तो उन वस्तुओं में थी ही नहीं। उसने नाराज होकर कहा, देखिए! आप जो नहीं लेने गए थे, वह तो सब ले आए, पर जो लेने गए थे सिर्फ उसको नहीं लाए। अब शीरा किससे बनेगा?

बेचारे पेस्टन जी की सूरत देखने लायक बन गई।

हंसी आ सकती है आपको पेस्टन जी की स्थिति पर। परंतु थोड़ा विचार करेंगे तो पाएंगे कि जीवन के अंत पर आपकी स्थिति भी पेस्टन जी से बहुत भिन्न नहीं होगी। बची-खुची श्वासें जब हाथ से फिसल रही

होंगी, तब आप पाएंगे कि जो करने जैसा था सिर्फ वही छूट गया है, शेष बहुत कुछ आपने कर लिया है। क्योंकि जीवन में समय का संयोजन नहीं है। planning नहीं है। और हम सोचते भी नहीं हैं कि हमें जीवन को संयोजित करना भी चाहिए। हमें जिस समय जो अच्छा लगता है, कर लेते हैं। पर अच्छा लगना और अच्छा होना दो अलग बातें हैं। आपको जो अच्छा लगता है, यह निश्चित नहीं है कि वह अच्छा ही हो। परिणाम पर ठीक-ठीक पता चलता है कि क्या अच्छा था और क्या अच्छा नहीं था। इसलिए समय का संयोजन आवश्यक है।

समय–संयोजन

क्या है संयोजन? कैसे हम व्यवस्थित विधि से जीवन को जीएं? इसके लिए प्रथम सूत्र है, संविभाग। संविभाग का अर्थ है, सम्यक् विभाग, सम्यक् रूप से समय को बांटना, कैसे संविभाग किया जाए? हमारे ऋषियों और मुनियों ने इसके लिए बहुत सुंदर विवेचन दिया है। उस विवेचन के अनुसार सर्वप्रथम आप यह चिंतन कीजिए कि आप किसके लिए जी रहे हैं? इस पर विशद चिंतन करते हुए आप इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि आप अपने लिए जीवन जी रहे हैं। आपके लिए जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह स्वयं आप हैं। आपकी आत्मा है। परिवार, बच्चे, धन सब बाद की बातें हैं। आप स्वयं महत्वपूर्ण हैं अपने लिए। इसलिए अपने उत्थान के लिए। आत्मविकास के लिए आप अपने जीवन मे कुछ समुचित समय निर्धारित कीजिए! दिन और रात के चौबीस घंटों में से पच्चीस प्रतिशत अर्थात् लगभग छह घंटे अपने विकास के लिए निर्धारित कीजिए!

आत्मविकास का उपाय : ध्यान

आत्मविकास अर्थात् क्या? आत्मविकास का अर्थ है जिससे आपकी आत्मा में विकास आए, जिससे आप भीतर और बाहर से खिल सकें। आत्मविकास के लिए जरूरी है कि आप प्रतिदिन कुछ समय

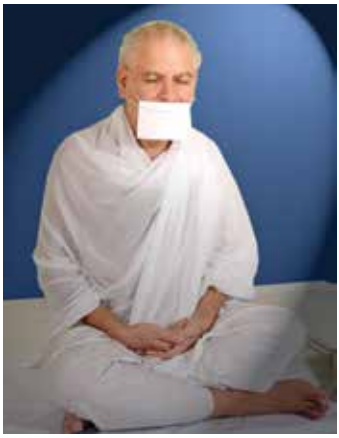

अपने साथ बिताएं। कठिन लगेगा यह आपको। क्योंकि आप अपने अतिरिक्त शेष सारी दुनिया के साथ समय बिता सकते हो। जानी दुश्मन के साथ आप रह सकते हैं, पर अपने साथ रहना आपको कठिन प्रतीत होगा। क्यों? क्योंकि अनादिकाल से आप बाहर रहे हैं, मित्रों के साथ रहे हैं, परिवार के साथ रहे हैं, दुश्मनों के साथ रहे हैं। सबके साथ रहे हैं पर अपने साथ नहीं रहे हैं। अपने साथ नहीं रहे हैं, इसलिए आपको दूसरों की आवश्यकता अनुभव होती रही है। अपने साथ रहना शुरू करेंगे तो आपको पता चलेगा कि अपने साथ रहना कितना आनन्दपूर्ण है।

अपने साथ रहने की विधि है ध्यान। ध्यान के क्षण में आप अपने साथ होते हैं। आपको ध्यान आत्मसान्निध्य देता है, आपकी अपनी छांव देता है, आपको अपना विश्राम देता है, आपको आपका घर देता है। ध्यान के क्षण में आप अपने साथ होते हैं। उस क्षण परिवार विलीन हो जाता है, क्रोधादि कषाय विलीन हो जाते हैं, देह विलीन हो जाती है। सिर्फ आप होते हैं, सत्य होता है, चैतन्य होता है और आनन्द होता है।

प्रतिदिन दो घंटे ध्यान के लिए रखिए! घबराइए नहीं दो घंटे से। चौबीस घंटे आप दुनिया के साथ मजे में रह सकते हैं तो अपने साथ दो घंटे क्यों नहीं रह सकते हैं। शुरू-शुरू में आपको अरूचिकर प्रतीत होगा। क्योंकि पौद्गलिक रूचियां आपके मन में बसी हुई हैं। धीरे-धीरे मन का विलय होता जाएगा और आपके लिए वे दो घंटे जीवन की सर्वाधिक सरस निधि बन जाएगी।

दो घंटे स्वाध्याय करें। श्रेष्ठ साहित्य पढ़ें। दार्शनिक और चिन्तक जीव और जगत के बारे में क्या सोचते हैं इसका आपको ज्ञान होगा। आपका चिन्तन पैना बनेगा। आत्मान्वेषण का द्वार सुलभ होगा। स्वाध्याय आपके आत्म-दर्पण को स्वच्छ बनाएगा।

शेष दो घंटे में आप अपने आवश्यक दैनंदिन के कार्य पूरे करें, जिसमें भोजन स्नान आदि आते हैं।

इस प्रकार दिन का पच्चीस प्रतिशत भाग आप अपने लिए निर्धारित करें।

आवश्यकता/आकांक्षा

दूसरी बात आती है आजीविका की। दिन का पच्चीस प्रतिशत विभाग आप अपने व्यवसाय के लिए रखें। आपको लगेगा कि यह तो बहुत कम है। परन्तु होना तो इतना ही चाहिए। यदि आप पूरे श्रम और निष्ठा से काम करो तो इस सम में आप अपने लिए और अपने परिवार के लिए रोटी, कपड़ा और मकान तो कमा ही सकते हैं। इतना कमा सकते हैं जिससे आपकी आवश्यकताएं पूरी हो सकें। हां, रही इच्छा की बात, वह तो आप भुक्तभोगी हैं ही। उसकी पूर्ति के लिए तो अहर्निश का श्रम भी कम है। जीवन भर पिसते रहो,

जन्म-जन्मान्तर तक पिसते रहो, तब भी इच्छा तो पूरी होने वाली नहीं है।

घर में चार सदस्य हैं, तो चार कमरों का मकान पर्याप्त है। क्या करोगे पन्द्रह कमरे बनाकर? परन्तु पंद्रह कमरे बनाए जाते हैं। इतना फैलाव किया जाता है जिसकी आवश्यकता नहीं होती है। फिर वैसा करते हुए आप इस गणित को भूल जाते हैं कि अन्य लोग भी हैं जिन्हे रोटी, कपड़ा और मकान की जरूरतें हैं। आपकी इच्छा जितनी विशाल होती जाती है, उतना ही असंतुलन बढ़ता जाता है। आप पंद्रह कमरों का घर बनाएंगे, पर दस लोग ऐसे भी आपकी बगल में होंगे जिनके पास सिर छिपाने को छत नहीं होगी। इच्छाएं असंतुलन निर्मित करती हैं। असंतुलन से प्रतिस्पर्धा जागती है और प्रतिस्पर्धा से वैमनस्य जन्म लेता है। इसलिए जरूरी है कि आप उतना ही कमाएं जिससे आपकी आवश्यकताएं पूरी हो सकें। उसके लिए छह घंटे का कार्य पर्याप्त है।

परिवार–समाज–देश

उसके बाद क्रम आता है परिवार, समाज और देश का। आप जिस परिवार के साथ रहते हैं, जिस परिवार के आप सदस्य हैं उसके लिए भी कुछ समय आवश्यक है। आपके परिवार में आपकी माता है, आपके पिता हैं, आपकी पत्नी है, बच्चे हैं, उनके लिए भी कुछ समय दीजिए! उनके साथ बैठिए, उनसे बातें कीजिए, उनके सुख-दुख पूछिए! उससे पारिवारिक प्रेम में विकास आएगा।

जिस समाज में आप रहते हैं, उस समाज के लिए थोड़ा समय दीजिए! सामाजिक कार्यों में भाग लीजिए! उससे आपके जीवन में थोड़ी सरसता आएगी।

तृतीय है देश। आप जिस देश में रहते हैं, जिस प्रान्त और नगर में रहते हैं, उनके लिए भी आपके कुछ दायित्व बनते हैं आज आप

दिल्ली में रहते हो, लेकिन दिल्ली के लिए आपने क्या किया? सभी लोग शोर मचाते हैं कि बहुत प्रदूषण है दिल्ली में, रास्ते पर जगह-जगह गड्ढ़े हैं, कचरे के ढेर हैं स्थान-स्थान पर, आदि-आदि।

फरियाद करना तो आसान है पर जरा सोचें आपने उसके लिए क्या किया? उक्त समस्याओं के निराकरण का क्या कोई अंशमात्र प्रयास आपने किया? क्या आपको सभी ख्याल में भी आया कि आपको इसके लिए कुछ-न-कुछ तो करना चाहिए? समाज में जागरण लाना चाहिए? इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है, इतनी बीमारियां फैल रही हैं, इतने बच्चे बेसहारा हैं, आपने उनके लिए क्या किया?

आपका दायित्व है आपके देश और नगर के प्रति। अपने देश की उन्नति के लिए, खुशहाली के लिए आपको प्रतिदिन दो घंटे का समय नियोजित करना चाहिए। इस प्रकार छह घंटे आपको परिवार, समाज और देश के लिए समर्पित करने चाहिएं।

शेष पच्चीस प्रतिशत, अर्थात् छह घंटे आपको विश्राम करना चाहिए, अर्थात् निद्रा लेनी चाहिए।

यह है समय का सम्यक् संयोजन। व्यक्ति अपने दिन का पच्चीस प्रतिशत समय आत्मविकास के लिए लगाए, पच्चीस प्रतिशत आजीविका के लिए लगाए, पच्चीस प्रतिशत परिवार, समाज और देश के लिए समर्पित करे तथा शेष पच्चीस प्रतिशत समय में शरीर को विश्राम दे। यह समय का सम्यक् और संतुलित संयोजन है।

सुख : आत्मा का गुणधर्म

जब और जहां यह संयोजन असंतुलित बनता है वहां जीवन में तनाव और रोग आने की शुरूआत होती है। आज मनुष्य जिस तनाव से गुजर रहा है उसका मूलभूत कारण यही है कि उसके जीवन में समय का सम्यक् संयोजन नहीं है। मनुष्य शरीर के तल पर जीता

है और शारीरिक सुविधाओं के लिए ही वह दिन-रात श्रम करता रहता है। वह नित नूतन नवीन सुविधाएं सृजित करता है। परन्तु कोई भी सुविधा उसे संतोष नहीं दे पाती है, सुख नहीं दे पाती है। क्योंकि सुख वस्तुतः शरीर का धर्म नहीं है। सुख तो आत्मा का गुण है, आत्मा का स्वभाव है। पर आत्मा के लिए मनुष्य के पास कोई समय नहीं है, आत्मा को जानने और उसमें रमण करने के लिए उसने कोई समय बचाकर नहीं रखा है। शरीर की पूजा में ही वह सदैव लगा रहता है। इसीलिए वह तनाव में रहता है, दुख और चिन्ताओं में घिरा रहता है।

समय का संयोजन आवश्यक है। समय का संतुलन जरूरी है। अगर आप समय के संतुलन का बराबर पालन करते हैं तो जीवन में आप जहां हो, घर में हो, परिवार में हो, दुकान में हो, समाज में हो, जहां भी हो, वहीं रहते हुए सुख-शांति और आनंदपूर्वक जी सकते हो।

मद्रास में एक व्यक्ति थे। वे चार्टर्ड अकाउंटेंट थे। चार्टर्ड अकाउंटेंट के पास कितना काम होता है आप जानते ही हैं। वस्तुतः यह व्यक्ति पर निर्भर करता है। वह जितना चाहे अपने काम को बढ़ा सकता है और जितना चाहे काम को समेट भी सकता है। उस व्यक्ति के पास भी काम तो बहुत था, पर उसने अपने समय को इस प्रकार संयोजित और व्यवस्थित किया था कि वह सुबह दस बजे ऑफिस जाता था और शाम को छह बजे ऑफिस को बंद करके घर आ जाता था। कितना ही काम होता, महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण काम होता, पर वह अपने समय का पूर्ण पाबन्द था। छह बजे ऑफिस बन्द करके वह अपने घर पर आ जाता। ठीक समय पर भोजन करता, कुछ समय परिवार को देता, निर्धारित समय पर ध्यान, स्वाध्याय और सामायिक करता और ठीक सोने के समय वह निद्रा में चला जाता। पूरा सुव्यवस्थित और सुनियोजित था उसका जीवन।

वह व्यक्ति साठ वर्ष तक जीया। अपने जीवन के अन्तिम दिन तक वह पूर्णतः स्वस्थ और स्वाभाविक था। अन्तिम दिन भी वह अपने ऑफिस गया था। उसकी मृत्यु भी ऐसे हुई जैसे एक संत की मृत्यु होती है। ध्यान में बैठे-बैठे, आत्मचिंतन और स्वाध्याय में रहते हुए उसका मरण हुआ।

यह एक सत्य घटना है। उन्हीं भाई का एक मित्र था। वह भी चार्टर्ड अकाउंटेंट था। दोनों ने साथ-साथ में सी.ए. किया था। वह मित्र सदा ही उस व्यक्ति की खिल्ली उड़ाया करना था। अक्सर वह कहता था, अरे, क्लाइंट आते हैं छह बजे के बाद में और तुम छह बजे ही ऑफिस बंद करके चले जाते हो। तुम्हें पता है कि तुम्हें कितना नुकसान होता है?

प्रकृति की चेतावनी को सुनें

वह व्यक्ति कहता, कुछ भी हो, मुझे तो ऐसे ही जीने में आनंद आता है। वह मित्र सुबह नौ बजे ऑफिस में आ जाता था और रात में ग्यारह-बारह बजे तक काम करता था, तब घर जाता था। काम और काम में ही व्यस्त रहता था, शेष जीवनचर्या पर उसने कोई ध्यान न दिया। धन तो उसने बहुत कमाया पर अपना सुख और स्वास्थ्य खो दिया। जब उस व्यक्ति की आयु पैंतीस वर्ष की थी तो उसे पहला हार्ट-अटैक आया। चालीस वर्ष की अवस्था में उसे शुगर हो गया। परन्तु उसने काम की वही गति बनाए रखी।

प्रकृति मनुष्य को बार-बार चेतावनी देती है कि रुको, मनुष्य प्रकृति की चेतावनी को असुना कर देता है और अपने जीवन की गति को संवारता नहीं है। वह व्यक्ति भी अपने कारोबार में व्यस्त बना रहा। जब व पैंतालीस वर्ष का हुआ तो उसे सिरदर्द रहने लगा, पैरों में दर्द रहने लगा। जब शरीर में बीमारी आ जाए तो क्या होता है? मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। छोटी-छोटी बातों

में वह अपने मानसिक संतुलन को खो बैठता है। वही स्थिति उस व्यक्ति की भी हुई। वह परिवार से दुखी रहता और परिवार उससे दुखी रहता। अंततः पचपन वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। जब वह मरा तो दस बीमारियां उसके शरीर में थीं, बड़ा दुखी था वह, बड़ा असंतुष्ट था।

पैसा तो बहुत कमाया उसने जीवन में, पर पैसे के साथ आधियां और व्याधियां भी बहुत संचित कर लीं। इसीलिए बुद्ध पुरुषों ने कहा है, मनुष्य के मन में जैसे-जैसे उपाधि का व्यामोह बढ़ता है। वैसे-वैस वह अपने मन और शरीर के तल पर आधियों और व्याधियों से भी भर जाता है। उसकी सहज समाधि खो जाती है।

जरूरी है एक समय–सारिणी

समय की उपेक्षा मत कीजिए! शरीर की उपेक्षा मत कीजिए! अपनी स्वयं की उपेक्षा मत कीजिए! एक तादात्म्य बनाइए! एक समय सारणी बनाइए कि आपको कितना समय किस काम को देना है, कितना समय शरीर को देना है, कितना समय स्वयं अपने लिए रखना हे, किस समय भोजन करना है, किस समय सोना है आदि-आदि अपने सभी कामों को व्यवस्थित कीजिए! इस व्यवस्था से आप सभी काम करते हुए भी तनाव से मुक्त रहेंगे, आपको संतुष्टि मिलेगा।

जब आप अपने द्वारा सुनिश्चित समय-सारणी के अनुरूप भोजन करेंगे तो प्रतिदिन आपको निर्धारित समय पर ही भूख लगेगी। निर्धारित समय पर ही पाचक-रस आपके पेट में बराबर इकट्ठा हो जाता है। आजकल लोगों को एसिडिटी होती है, वजन बढ़ जाता है। यह सब क्यों होता है? यह इसलिए होता है कि एक दिन तो आप बारह बजे भोजन करते हो, दूसरे दिन एक बजे करते हो, तीसरे दिन दो बजे करते हो। तो पेट भी एक मशीन ही

तो है। उसके काम करने की भी एक क्षमता और नियम है। जब आप नियम में बाधा उपस्थित करते हो तो आपके भीतर की मशीन भी प्रभावित बनती है और आप बीमार हो जाते हो। अगर आप नियमित रूप से बारह बजे भोजन करते हैं तो आपके पेट को पता चल जाता है और पौने बाहर बजे सारे ग्रेस्ट्रिक ज्यूस अंदर आ जाते हैं। और ठीक बारह बजे आपको भूख लगती है। अगर आपने बारह बजे भोजन नहीं किया तो भीतर जो ग्रेस्ट्रिक ज्यूस आ गए हैं, जो एसिड आ गया है, वह आपके भीतर की चमड़ी को नुकसान पहुंचाना शुरू करता है। फिर धीरे-धीरे एसिडिटि और अल्सर की शुरुआत होती है।

इसलिए ठीक समय पर भोजन, ठीक समय पर नींद, ठीक समय पर ध्यान बहुत मदद करता है। आप कभी-कभी माला करते हो, कभी-कभी सामायिक करते हो, कभी सुबह में करते हो, कभी सांझ में करते हो, जब आपको सुविधा पड़ती है तब करते हो। उसके विपरीत आप जाप अथवा सामायिक का एक सुनिश्चित समय रखो कि नौ से दस मैं सामायिक करूंगा, ध्यान करूंगा, तो देखना आपख पंद्रह दिन यदि आपने नौ से दस ध्यान किया तो सोलहवें दिन आप इस समयावधि में किसी अन्य काम में भी होंगे तो आपका मन अपने आप ध्यान में आ जाएगा। क्योंकि मन को एक लय मिल गई, और मन ठीक नौ बजै आपको स्मरण दिला देगा कि ध्यान में डुबकी लगाने का समय हो गया है।

यह है समय का संयोजन। अपने लिए एक समय सारणी बनाओ। यह मुश्किल नहीं है। आसान है। थोड़ा प्रयत्न करने की जरूरत है।

स्थिरता–अस्थिरता

आगे के सूत्र पर अब विचार करेंगे। समय सारणी तो अपने

बना ली। अब समय-सारणी को क्रियान्वित करने के लिए जहां पर प्रयत्न करना जरूरी है, वहां पर एक बात यह भी जरूरी है कि जहां पर 'न' कहना जरूरी है वहां पर न कहो और जहां पर 'हां' कहना जरूरी है वहां पर हां कहो। कैसे? जैसे कि आपके मित्र का फोन आया कि कल दोपहर को बारह बजे मेरे घर पर अमुक कार्यक्रम है, उस पर तुमको जरूर आना है। अब आपको पता है कि कल दोपहर का समय आपने अपने लिए रखा है। पर मित्र का फोन आ गया है तो आप 'न' भी नहीं कह सकते हो, क्योंकि आपका 'न' मित्र को नाराज बना सकता है। आप 'हां' भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि उससे आपकी अपनी व्यवस्था गड़बड़ाती है। ऐसे में आप एक मध्यम-मार्ग निकालते हो। आप कहते हो, हां मैं कोशिश करूंगा।

'हां मैं कोशिश करूंगा' आपका यह वाक्य आपकी अस्थिरता को संसूचित करता है। आपको अपने भीतर सुस्थिर बनना चाहिए। आपको नहीं जाना है तो वहां 'न' कहिए। जाना है तो 'हां' कहिए। बीच का रास्ता मत निकालिए।

याद रखें, जो सबको खुश रखना चाहता है वह किसी को भी खुश नहीं रख पाता है। फिर लोग समझ जाएंगे कि इसने 'हां' कहा उसका भी कोई अर्थ नहीं है, इसने 'न' कहा उसका भी कोई अर्थ नहीं है। आप पर विश्वास नहीं रहेगा किसी को। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं के प्रति अविश्वस्त है वह किसी के लिए भी विश्वस्त नहीं हो सकता है। आपका अपना बेटा भी जान जाएगा कि पापा ने 'हां' कहा उसका भी कोई मतलब नहीं, 'न' कहा उसका भी कोई मतलब नहीं।

समय के संयोजन के लिए बहुत आवश्यक है कि जब 'न' कहना जरूरी है तो 'न' कहने से डरो मत। 'हां' कहना है तो 'हां' कहने में झिझको मत। यह आपके भोजन का समय है तो कहो 'हां', मैं भोजन

करूंगा। आप रात्रि में किसी के घर पर गए और रात्रि में आपको कुछ नहीं लेना है, लेकिन उन्होंने डिश में लाकर रख दिया आपके सामने, तो शुरू-शुरू में तो आप कहते हो कि नहीं मैं कुछ नहीं लूंगा। फिर वे लोग आग्रह करते हैं, पुनः पुनः आग्रह करते हैं तो आप पिघल जाते हो और ले लेते हो। फिर ऐसा रोज-रोज होने लगता है।

हम 'न' कहने से डरते हैं। हम सोचते हैं कि अगर मैंने 'न' कहा तो सामने वाले व्यक्ति को बुरा लगेगा। लेकिन किसी को बुरा लगेगा इसलिए हम अपना बहुत बड़ा नुकसान कर लेते हैं। सामने वाले को एक बार थोड़ा-सा बुरा लगेगा, पर शीघ्र ही वह समझ लेगा कि यह नहीं खाता है तो नहीं खाता है, इसलिए इसने 'न' कहा है, और 'हां' कहा है तो 'हां' कहा है। शुरू-शुरू में आपको थोड़ी कठिनाई पड़ सकती है पर धीरे-धीरे लोग आपको समझने लगेंगे कि सच में इसके 'न' में भी विश्वास है और इसके 'हां' में भी विश्वास है। यह विश्वास करने योग्य व्यक्ति है। इसलिए 'न' कहने से डरिए मत! 'न' कहना आवश्यक है तो जरूर 'न' कहिए!

अहोभाव–प्रेमभाव

समय की संयोजना का अग्रिम सूत्र है, आप अपने काम को पूरे प्रेमभाव से करें! प्यार पूर्वक अपने काम को करो! उदाहरण के लिए, एक गृहिणी है, उसे रसोई बनानी है, रसोई बनाना उसका काम है तो वह उसे करना ही है। उस कार्य को वह दो प्रकार से कर सकती है। एक तो वह उस कार्य को बोझ मानकर, विवशता मानकर करती है कि क्या है रोज-रोज रसोई बनानी पड़ती है, खाते हैं सब, अग्नि में मुझ अकेली को तपना पड़ता है। एक तो यह भाव है। दूसरा भाव है, वह प्रेम-भाव से भरकर रसोई बनाए। रसोई बनाते हुए अहोभाव से उसका हृदय भरे कि मुझे कितना मधुर कार्य मिला है, मेरे द्वारा बनाए हुए भोजन से पूरे परिवार की भूख शांत

होगी, मेरे द्वारा बनाए भोजन से सबको सुख मिलेगा, स्वाद मिलेगा।

ये दो भाव हैं। पहला भाव गृहिणी को बोझिल बना देता है, तनावग्रस्त बना देता है। फिर वह काम तो करेगी पर उसका काम सुरूचिपूर्ण न होगा। उसके काम से उसे कुछ सुख न मिलेगा। दूसरा भाव गृहिणी को आनन्द से भर देगा। उस द्वारा बनाया हुआ भोजन न केवल उसे संतुष्टि देगा बल्कि खाने वाले को भी तृप्ति देगा।

जब आप प्रेमपूर्ण बनकर कार्य करते हैं तो बड़ा कार्य भी आपके लिए छोटा हो जाता है, कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। जब आप काम बोझ मानकर करते हो तो छोटा-सा कार्य भी आपके किए बहुत बड़ा कार्य बन जाता है। प्रेम मण को भी कण बना देता है और तनाव कण को भी मण बना देता है।

एक महात्मा थे। वे किसी पहाड़ी पर चढ़ रहे थे। उनके सिर पर

एक गठड़ी थी। गर्मी का मौसम था। गर्मी और चढ़ाई। सिर पर बोझ। पसीना-पसीना हो गए थे महात्मा। कदम बढ़ाने दुभर प्रतीत पड़ रहे थे। मार्ग पर महात्मा को एक छोटी बच्ची मिली। वह एक बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाए हुए थी। फिर भी वह पहाड़ी पर चढ़ रही थी।

लड़की के पास पहुंचकर महात्मा ने कहा, बच्ची! तुम्हें बड़ा कष्ट हो रहा होगा, तुम स्वयं एक नन्ही बालिका हो और इतना बोझ लिए पहाड़ी पर चढ़ रही हो।

लड़की ने कहा, महात्मन्! बोझ तो आपके सिर पर है। मेरी पीठ पर तो मेरा भाई है। वह मेरा भाई है इसलिए मुझे कुछ बोझ नहीं लग रहा है।

जहां प्रेम हो वहां बोझ नहीं होता। जहां प्रेम न हो वहां बोझ न होते हुए भी बोझ होता है। प्रश्न प्रेम का है। प्रेम आपके काम को सुमधुर बना देता है। इसलिए आप जो भी कार्य करें प्रेमपूर्वक करें। छोटे-से-छोटे कार्य को भी प्रेम-पूर्ण रीत से करें। बिस्तर की चद्दर भी ठीक करनी है तो प्रेमपूर्वक करे, जूते भी खोलने हैं तो प्रेम पूर्वक खोलें। जो भी करें भावपूर्वक करें, प्रेम से भरे हुए हृदय के साथ करें, देखेंगे आप, कि आपके कार्यों में फरक आ जाएगा।

आप जिस तकिए पर सिर रखकर सोते हो, प्रेमपूर्वक पांच मिनट उस तकिए पर हाथ रखिए! देखना आप, फिर आपकी जो नींद होगी वह गहरी हो जाएगी। वह पांच मिनट का आपका प्रेमपूर्ण तकिए का स्पर्श आपकी नींद को बदल देगा।

प्रेम का चमत्कार

नासिक में एक भाई थे। छह महीने से उन्हें ठीक से नींद नहीं आती थी। नींद न आने के कारण लगातार उनका वजन कम होता जा रहा था। एक दिन प्रवचन में हम मैत्री-भाव की चर्चा कर रहे थे। मैंने

अपने प्रवचन में बताया कि मैत्री भाव वस्तुओं से भी करना चाहिए, अपने बिस्तर से, तकिए से भी हमें प्रेमपूर्ण बनना चाहिए।

उस भाई की पत्नी भी प्रवचन में मौजूद थी। उसने सोचा, महाराज के कहे को करके देखना चाहिए। उस महिला ने अपने पति के बिस्तर पर, तकिए पर, चद्दर पर पांच-पांच मिनट प्रेमपूर्वक हाथ रखा। सुबह उठकर पति ने कहा, कमाल हो गया, पिछले छह महीनों के बाद आज मैं ठीक से सो सका हूं।

यह एक घटना है। यह आप भी करके देख सकते हैं। आप भोजन करने बैठते हो। एक विधि तो है कि भोजन आपके सामने आया और आपने फटाफट उसे पेट में डाल लिया और बात समाप्त हो गई। दूसरी विधि है, आप भोजन प्रारंभ करने से पहले बड़े प्रेम से स्मरण करो उस महिला को जिसने आपके लिए भोजन बनाया। उसे धन्यवाद दो कि उसने बड़ा सुन्दर भोजन आपके लिए बनाया। उस किसान को धन्यवाद दो जिसने उस अन्न को उगाया। उस धरती को धन्यवाद दो, जिस धरती में वह अन्न उगा। जिस प्लेट में आप भोजन कर रहे हो उस प्लेट को धन्यवाद दो। प्लेट न होती तो हाथ में भोजन करना पड़ता, तब भोजन प्रारंभ करो, देखना आप भोजन का स्वाद बदल जाएगा। थोड़े से भोजन में ही आपको तृप्ति आ जाएगी।

आप पढ़ते हैं। एक तो यह सोचकर पढ़ें कि क्या बोझ ढोना पड़ रहा है। बाहर दूसरे बालक मजे से खेल रहे हैं। मुझे यह पुस्तक पढ़नी पड़ रही है। दूसरे, पुस्तक को प्रेमपूर्वक पढ़ें, यह भाव आपके हृदय में हो कि यह पुस्तक मेरे भविष्य को संवारेगी, मुझे कुछ नया सीखने को मिलेगा। इस भाव से पढ़ेंगे तो देखना पुस्तक पर अंकित ज्ञान आपका अपना ज्ञान बन जाएगा।

डेलकारनेगी ने एक बहुत सुंदर बात लिखी है, जैसे हमारे

मन के भाव होते हैं वैसे ही हमारा चेहरा और हमारे भाव बन जाते हैं। लेकिन उससे उल्टा भी होता है। जैसा हमारा चेहरा होता है वैसे ही हमारे मन के भाव भी बन जाते हैं।

आप क्रोध में हैं तो आपके चेहरे पर क्रोध के निशान प्रगट हो आएंगे। पर यह भी सही है कि चेहरे को क्रोध के लक्षणों वाला बना लोगे तो मन भी धीरे-धीरे क्रोध से भर जाएगा।

हम मन को तो सीधे से पकड़ नहीं सकते हैं, चेहरे को तो बदल सकते हैं। रोते हुए पुस्तक पढ़ रहे थे, अब हंसते हुए पुस्तक पढ़ेंगे। शुरू-शुरू में लगेगा कि आप ड्रामा कर रहे हैं अपने साथ। पर धीरे-धीरे पाएंगे कि आपकी वह मुस्कान भीतर से आने लगेगी।

आप जो भी करें उसे प्रेमपूर्वक करें। जब आप प्रेमपूर्वक काम करोगे तो काम के बाद में आपको थकान नहीं लगेगी, काम के बाद में एक नवीन ऊर्जा का अनुभव होगा। भीतर एक ताजगी का अनुभव होगा।

इस प्रकार हम अपने समय को संयोजित करें। समय संयोजन का प्रथम सूत्र है, समय का सम्यक् विभाग अर्थात् संविभाग करें। पच्चीस प्रतिशत समय अपने लिए, पच्चीस प्रतिशत आजीविका के लिए, पच्चीस प्रतिशत परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए तथा शेष पच्चीस प्रतिशत विश्राम के लिए समय सुनिश्चित करें। दूसरा सूत्र, एक समय सारिणी बनाएं और उसी के अनुसार चलें। तृतीय सूत्र 'न' कहने से डरें नहीं। जहां 'न' कहना जरूरी है वहां जरूर 'न' कहें। और चौथा सूत्र, जो भी काम करें उस काम से बड़ा प्यार करें।

जब ये चारों सूत्र आपके जीवन का अंग बन जाएंगे तो आपके जीवन में यह कहने का प्रसंग नहीं आएगा कि मेरे पास समय नहीं है, कि समय मिलेगा तो करूंगा। यह जो कहता है, या तो वह बुद्धू है या फिर वह काम करना नहीं चाहता है। अगर वह बुद्धिमान है, समय संजोजन का उसे पता है, या तो वह यह कहेगा कि हां मैं करूंगा, या वह स्पष्ट कहेगा कि यह मुझे नहीं करना है। यह बात ही गलत है कि मेरे पास समय नहीं है।

समय-संयोजन के सूत्र आपके जीवन को संयोजित और सुमधुर बनाने में आपके लिए सहयोगी होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

समाधान की शीतल छांव

जब आप नमस्कार करते हो तो हृदय–केन्द्र की जो सर्किट है वह पूरी हो जाती है। जब आप नमस्कार करते हो तो सामने वाले व्यक्ति को कोई फायदा हो या न हो, लेकिन आपको बहुत फायदा होता है। जब आपके हाथ जुड़ते है तो आपके हृदय–केन्द्र में कुछ विकसित होता है। कुछ खिलता है। भावपूर्ण आप किसी को हाथ जोड़कर देखिए, आपको अपने हृदय–केन्द्र पर बहुत विकास अनुभव होगा।

7

समाधान की शीतल छांव

वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में रात्रि भोजन–त्याग

कुछ प्रश्न हैं मेरे समक्ष जिन पर आज हम वार्ता करेंगे।

प्रथम प्रश्न - हमारे यहां रात्रिभोजन का निषेध किया गया है। यह तो तर्क संगत है कि प्राचीन काल में बिजली नहीं थी और रात्रि भोज मे हिंसा संभावित थी। वर्तमान में रात्रि में भी दिन जैसा प्रकाश सुलभ है। पर आज भी आप रात्रि-भोजन त्याग का प्रचार करते हैं। रात्रि-भोजन त्याग क्यों आवश्यक है? कृपया आप इसके वैज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डालें।

समाधान - इस जगत में दो प्रकार के प्राणी हैं। कुछ प्राणी हैं जो सूरज के साथ गति करते हैं, और कुछ प्राणी हैं जो चन्द्रमा के साथ जीते

हैं। सूरज के साथ गति करने वाले प्राणी सूरज की उपस्थिति और अनुपस्थिति से भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित होते हैं। ऐसे ही चन्द्र की गति के साथ गति करने वाले प्राणी भी चन्द्रमा की उपस्थिति और अनुपस्थिति से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रभावित होते हैं।

सूरज के साथ गति करने वाले प्राणियों में सूरज के उदय के साथ ही कुछ खुलने की शुरूआत होती है। जैसे कमल खिलता है वैसे ही उनके शरीर के भीतर का तंत्र भी खिलता है। सूरज मध्य आकाश पर आता है तो वे पूरे-के-पूरे खुल जाते हैं, पूरे-के-पूरे खिल जाते हैं। विकास की उस प्रक्रिया में वे बाहर से कुछ तत्त्व ग्रहण करते हैं। वह ग्रहण ही उनका भोजन है। अर्थात् उनका भोजन ही वह तत्व है जो उनके खिलने और खुलने की ऊर्जा में रूपायित होता है। फिर जैसे-जैसे सूरज विदा होने लगता है और अस्त हो जाता है वैसे-वैसे वे प्राणी अपने भीतर में बंद हो जाते हैं। उनके भीतर जो तंत्र खुला था वह बंद हो जाता है। यह उनके शरीर का प्राकृतिक नियम है।

मनुष्य भी सूरज के साथ जीने वाला प्राणी है। जैसे-जैस सूरज की अवस्था में परिवर्तन आता है वैसे-वैसे उसके भीतर भी, उसके शरीर के रसायनों में, उसके मन में और उसके समग्र अस्तित्व में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन आता है।

हमारे शरीर में योग के अनुसार कई चक्र हैं। उनमें से नाभिचक्र और हृदय-चक्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। हमारे पूरे शरीर-संस्थान को नाभिचक्र नियंत्रित करता है। हृदय-चक्र हमारी समस्त भावनाओं का केन्द्र है। जब सूरज उगने की शुरूआत होती है तो इन चक्रों में भी खिलने की शुरूआत हो जाती है। फिर जैसे-जैसे सूरज ऊपर चढ़ता है ये चक्र पूरी तरह खुल जाते हैं। शाम को जैसे ही सूरज पश्चिम में जाता है वैसे ही ये चक्र धीरे-धीरे बंद हो जाते हैं।

आप जो आहार करते हैं वह आपके पाचन-तंत्र के साथ जुड़ा हुआ है। आपका पाचन-तंत्र आपके नाभिचक्र से जुड़ा हुआ है। सूरज के डूबने से आपका नाभिचक्र सिकुड़ता है। उसके साथ ही आपका पाचन-तंत्र भी सिकुड़ता है। सूरज डूबने के साथ आपके भीतर भी एक विशेष परिवर्तन घटित होता है। आपका नाभिकमल धीरे-धीरे बंद होने लगता है।

देखिए, जब सूरज डूबता है तो बाहर प्रकृति में भी काफी कुछ परिवर्तन होता है। शहरों में तो आपको कुछ अधिक महसूस नहीं होता है। जरा गांवों में जाकर देखो। शाम को ठीक से देखना हो तो गांव में जाकर देखिए! जब सूरज डूबता है तो पक्षी अपने घोंसलों में लौट आते हैं। कुछ जीव-जन्तु हैं जो विश्राम में चले जाते हैं और कुछ जीव-जन्तु हैं जो सक्रिय हो जाते हैं। मक्खियां कम हो जाती हैं, मच्छर अधिक होने लगते हैं। ये सारे परिवर्तन सूरज डूबने के साथ-साथ वातावरण में

घटित होते हैं। वातावरण में शांति छाने लगती है। वातावरण धीरे-धीरे स्तब्ध हो जाता है। एक दम शांत हो जाता है।

रात्रि–विश्राम का संयोजन

मनुष्य के लिए भी यह जरूरी है कि जब सूरज डूबे तो उसे भी विश्राम की ओर जाना चाहिए। आराम की ओर जाना चाहिए।

विश्राम का सही समय क्या है? हमारे यहां रात्रि के चार विभाग किए गए हैं। बारह घंटे की रात्रि को तीन-तीन घंटे के चार विभागों में

बांटा गया है। रात्रि के प्रथम तीन घंटों में अर्थात् रात्रि के प्रथम विभाग में प्रवेश करते ही हमें श्रम से मुक्त हो जाना चाहिए। द्वितीय प्रहर में हमें विश्राम में अर्थात् निद्रा में चले जाना चाहिए। सूरज उगने से तीन घंटे पूर्व अर्थात् जब रात्रि एक प्रहर शेष हो तब हमें उठ जाना चाहिए। यह मनुष्य की विश्राम के संदर्भ में संतुलित प्रक्रिया है कि सूरज डूबने के तीन घंटे पश्चात् वह निद्रा में चला जाए और सूरज उगने के तीन घंटे पहले वह निद्रा से बाहर आ जाए।

जब हम भोजन करते हैं तो भोजन करने में हमें पंद्रह या बीस मिनट लगते हैं। उस भोजन को पचाने के लिए हमारे शरीर को तीन घंटे श्रम करना पड़ता है। फिर जैसा भोजन आजकल किया जाता है, परांठे, मटर-पनीर की सब्जी, अर्थात् भारी भोजन, ऐसे भोजन को हजम करने के लिए हमारे पेट को और अधिक समय और श्रम करना पड़ता है। जब आप देर रात्रि में भोजन करते हैं तो प्रथम बात तो यह कि आप मानवीय शरीर की प्रक्रिया के विरुद्ध कार्य करते हैं। दूसरी बात यह कि देर रात्रि में जब आपके शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है तब आप उसे श्रम में धकेल देते हो।

शरीर का अन्तर्द्वन्द

अक्सर आजकल अधिकांश लोग देर रात काम से लौटते हैं और भोजन करके बिस्तर में लेट जाते हैं। फिर होता यह है कि आप आराम में जाना चाहते हो और आपके शरीर को भीतर श्रम करना पड़ रहा है। आप अपने शरीर के साथ विरोधाभास से भर जाते हो। शरीर को एक साथ दो दायित्व आप सौंप देते हो। उसे नींद का कार्य भी सौंप देते हो और भोजन को पचाने का कार्य भी सौंप देते हो। पर शरीर तो शरीर है। आपके चाहे से तो वह चलेगा नहीं। उसकी प्रक्रिया में आप बाधा डालोगे तो वह अपने ढंग से व्यवस्था करेगा। आप नींद में जाएंगे तो शरीर आपके भोजन को ठीक से पचाएगा नहीं। अपचा भोजन ही आपके शरीर में पड़ा रहेगा। फिर वह भोजन जो आपको ऊर्जा और स्फूर्ति देने वाला सिद्ध होता, वही आपके लिए रोगों का कारण बन जाता है।

बाहर से विश्राम और भीतर से श्रम ऐसी स्थिति में शरीर अपने साथ लड़ने की शुरुआत करता है। फिर वह न तो ठीक से विश्राम में जा सकता है और न ही पूरा श्रम कर सकता है। तो जो भोजन आप देर रात में करते हो, वह भोजन कभी भी ठीक से हजम नहीं होता है। साथ ही आप जो नींद लेंगे, वह

नींद भी ठीक से नहीं आएगी। नींद में आप सपने लेते रहेंगे। अगर आपने तीखा भोजन अधिक लिया है तो सपने उत्तेजना पूर्ण होंगे। अगर आपने गरिष्ठ भोजन लिया है तो सपने उद्दीपक होंगे।

तो जब आप देर रात में भोजन करते हो तो सबसे पहले आपकी निद्रा का समय पीछे चला जाता है। दूसरी बात जब आप देर से सोएंगे तो सुबह भी देर से उठेंगे। जब नींद का समय पीछे जाता है तो आप ठीक से विश्राम ले ही नहीं पाते हैं। सोते हैं आप, पर सोने से जो ऊर्जा और स्फूर्ति आपको प्राप्त होनी चाहिए वह प्राप्त नहीं हो पाती है।

कम समय : अधिक विश्राम

वैज्ञानिक दृष्टि से रात्रि दस बजे से रात्रि दो बजे के मध्य आप जो निद्रा लेते हैं, उस निद्रा से आपको जो विश्राम मिलता है, जो ऊर्जा, ताजगी और स्फूर्ति मिलती है वह रात्रि बारह बजे से सुबह दस बजे तक ली गई निद्रा से नहीं मिलती है। जब आप जल्दी सोते हो तो कम समय में ज्यादा आराम मिलता है। क्योंकि शरीर का विश्राम में जाने का वही सही समय है। उचित समय पर जब शरीर विश्राम में जाएगा तो उसे कम समय में ही ज्यादा विश्राम प्राप्त हो जाएगा। इसे ऐसे समझें, आपको तीस तारीख को टैक्स भरना है, पर तीस तारीख तक आपने टैक्स भरा नहीं, उसके बाद आप टैक्स भरने जाते हो तो आपको पैनल्टी देनी पड़ती है। ऐसे ही जब नींद का समय चला गया और बाद में सोते हो तो शरीर को पैनल्टी भरनी पड़ती है। यानि कि ज्यादा देर सोना पड़ता है, फिर भी विश्राम कम मिल पाता है।

रात्रि-भोजन त्याग का संबंध केवल जीव हिंसा से नहीं जुड़ा है। हालांकि यह कारण भी अपने आप में एक पर्याप्त कारण है। परंतु इस कारण के अतिरिक्त भी जो कारण है वह भी अत्यन्त

अर्थपूर्ण है। और वह कारण यही है कि रात्रि-भोजन मनुष्य के शरीर की संरचना के विरुद्ध है। रात्रि में भोजन करते हुए आप अपने शरीर पर अत्याचार करते हो। स्वयं अपने ऊपर अत्याचार करते हो। उससे आपके शरीर की पूरी-की-पूरी कार्यप्रणाली अव्यवस्थित बन जाती है। शुरू-शुरू में पता नहीं चलता है। पर धीरे-धीरे जब सिस्टम फेल हो जाता है तब फिर बीमारियां आती हैं, रोग आते हैं।

शारीरिक संरचना के अनुसार यदि हम चलेंगे तो शरीर हमारा साथ देगा। रात्रि-भोजन न करने का सर्वप्रथम कारण है, आपके जो सूक्ष्म और स्थूल शरीर हैं, वे दोनों ही सूरज के साथ जुड़े हुए हैं। जब आप सूरज के रहते हुए भोजन करते हो तो आपका भोजन बहुत जल्दी हजम हो जाता है। सूरज डूबने के पश्चात् जब आप भोजन करते हो तो आपके शरीर को Over time करना पड़ता है। कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। जो कार्य एक घंटे में हो सकता था, उस कार्य को करने के लिए शरीर को दो और तीन घंटे लगते हैं। कब तक शरीर Over time करेगा। एक न एक दिन वह थक जाएगा। सिस्टम फेल हो जाएगा।

दूसरी बात, जब आप देर रात सोकर सुबह देर से उठते हो, तो आपके शरीर में विष संचित होता चला जाता है। भोजन के साथ में आपकी नींद जुड़ी हुई है और नींद के साथ में आपका मन जुड़ा हुआ है। इसलिए रात्रि-भोजन त्याग अनिवार्य है। और स्मरण रखें, रात्रि-भोजन परिहार केवल जैनों तक ही सीमित नहीं है। जो भी इस दुनिया में समझदार व्यक्ति हुए, जिन्होंने भी भोजन और शरीर-संस्थान को ठीक से समझा, उन सभी ने रात्रि में भोजन न करने की सलाह दी। रात्रि में भोजन न करते हुए आप अधिक स्वस्थ, अधिक ऊर्जावान और सुदीर्घ जीवी बनते हो। उससे मन सुप्रसन्न रहता है। शरीर स्वस्थ बनता है। आप एकदम हलके हो जाते हैं।

पक्षियों की तरह मुक्त और स्वस्थ होकर गगन विहारी हो जाते हैं।

संबंधों का माधुर्य

दूसरा प्रश्न- हम अपने संबंधों को सुमधुर कैसे बनाएं?

समाधान- संबंध संबंध तभी हैं जब उनके अन्दर दो बाते हों। पहली बात है प्रामाणिकता। आप परस्पर प्रामाणिक बनें। दूसरी बात है पारस्परिक गहन विश्वास। एक-दूसरे के प्रति गहरा विश्वास।

प्रामाणिकता यानि क्या? प्रामाणिकता का अर्थ केवल सच बोलना ही नहीं है। प्रामाणिकता का अर्थ होता है कि जैसा आप अपने लिए चाहते हो वैसा ही उन लोगों के लिए भी चाहो जिनसे आपके संबंध हैं। जैसे कि आप चाहते हो कि आप पर किसी का दबाव न हो, वैसे ही आपको भी चाहिए कि आप किसी पर दबाव न डालें। लेकिन अक्सर असंतुलन हो जाता है। पुरुष चाहेगा कि स्त्री का मुझ पर कोई दबाव नहीं होना चाहिए। स्त्री भी चाहेगी कि पुरुष को मेरे अनुकूल चलना चाहिए। पारस्परिक असंतुलन के कारण संबंधों में तनाव उत्पन्न हो जाएगा।

संबंधों को सुमधुर बनाने का सबसे पहला उपाय है, प्रामाणिकता। जैसा आप अपने लिए चाहते हो वैसा ही अपने संबंधियों के लिए भी चाहें।

गलती होना स्वाभाविक है

दूसरी बात, वह है सत्य को पचाने की शक्ति। एक दूसरे को हम सच कहें। सच कहने के साथ-साथ में सच को पचाने की शक्ति भी रखें। आज आपके किसी संबंधी ने कोई गलती कर दी तो उस गलती को कभी भी इतना मत खींचें कि उस गलती को बताने से पहले उसे दस बार सोचना पड़े। गलती हो जाना स्वाभाविक है। कदम-कदम पर गलतियां होती हैं। उसे सुनें और प्रेम से उसका मार्गदर्शन करें। उसे खींचें

नहीं। उसे उपालंभ न दें। उसे प्रेम दें। प्रेम से उसका मार्गदर्शन करें।

आपके घर में कोई बच्चा गलती कर देता है। मां उसे एक बार टोकेगी तो वह सुन लेगा। दो बार टोकेगी तो भी वह सुन लेगा, तीन बार टोकेगी तो भी सुन लेगा। लेकिन मां यदि टोकती ही जाएगी, टोकती ही जाएगी तो बच्चा समझ लेगा कि सच बोलने का क्या परिणाम निकलता है। तो बहुत जरूरी है कि हम सत्य को पचाएं।

मेरा घर/दादाजी का घर

एक और बात। एक घर सच में कब घर बनता है? घर सच में तभी घर बनता है जब उस घर के प्रत्येक सदस्य को यह लगे कि यह मेरा घर है। मैं एक घर में गया था। वहां एक सात-आठ वर्ष की नन्ही बालिका थी। उससे मैंने कहा, बच्ची! तुम्हारा घर बहुत बड़ा है।

मेरी बात सुनकर उस बच्ची ने कहा, नहीं, नहीं, यह मेरा घर नहीं है। यह तो दादाजी का घर है।

एक नन्ही-सी बालिका को अपने दादाजी का घर अपना घर नहीं लग रहा है। उसे लगता है कि दादाजी कोई और हैं, वह कोई और है। जो दादा जी का है वह उसका नहीं है। एक नन्ही और कोमल बालिका के हृदय में ये भाव कैसे आए? कहाँ से आए? उस नन्ही बालिका ने कैसे यह निर्णय कर लिया कि दादाजी और उसकी चीजों में अलगाव है?

आप थोड़ा चिन्तन करेंगे तो पाएंगे कि उस नन्ही-सी बालिका को अवश्यक ही यह अनुभव हुआ है कि वह घर उसका नहीं है। उस घर पर किन्हीं माध्यमों से उसके दादाजी ने यह सिद्ध किया है कि यह घर सिर्फ उसी का है। भले ही दादाजी भी यह बात न जानते रहे हों कि वे अपने व्यवहार से यह घोषित कर रहे हैं कि घर सिर्फ उन्हीं का

है। पर वह जो सूक्ष्म उद्घोषणा है उस सूक्ष्म उद्घोषणा को बालिका ने पकड़ लिया है और समझ लिया है कि घर उसका नहीं है। घर दादाजी का है।

सुमधुर संबंधों की आधारशिला के लिए आवश्यक है कि घर के प्रत्येक सदस्य को यह लगे कि यह घर उसका है।

संयुक्त परिवार के आधार सूत्र

इसके लिए आवश्यक है कि जब भी घर में कोई नया निर्णय लिया जाए, अथवा कोई आयोजन किया जाए तब आपका दायित्व बनता है कि घर के प्रत्येक सदस्य की राय उसमें ली जाए। जो आप करने जा रहे हैं उसमें घर के प्रत्येक सदस्य को सम्मिलित किया जाए। वह सदस्य छोटा हो या बड़ा हो। यह सच है कि आप जो करने जा रहे हो आप करेंगे ही। पर यदि आप उसमें सभी की राय जान लेंगे तो वह कार्य आपके पूरे परिवार का हो जाएगा। घर का प्रत्येक सदस्य न केवल आत्म-सम्मान महसूस करेगा बल्कि वह समझेगा कि वही वह काम कर रहा है। इससे संबंधों में माधुर्य बरसेगा।

जलगांव में एक बृहद् संयुक्त परिवार है। उस परिवार में जब भी किसी बच्चे का जन्म होता है तो परम्परानुसार परिवार का प्रत्येक सदस्य दो-दो नाम चुनता है। सभी सदस्य जब दो-दो नाम चुन लेते हैं तो उन सभी नामों को एक पट्टी पर लिखा जाता है। फिर जिस

नाम को ज्यादा नम्बर मिलते हैं वही नाम आगन्तुक बच्चे को दिया जाता है।

यह एक छोटा-सा उपक्रम है। परन्तु इससे पारिवारिक माधुर्य में और मधुरता उतर आती है। वृद्ध से लेकर बालक तक प्रत्येक सदस्य को आत्मसम्मान अनुभव होता है। प्रत्येक सदस्य को लगता है कि प्रत्येक कार्य उसका अपना है।

मिलकर बैठें

संबंधों को सुमधुर बनाने के लिए और सूत्र पर हम विचार करें। पुराने समय में हमारे घरों में यह सूत्र जीवंत था। इसी सूत्र के कारण हमारे परिवार सूत्रबद्ध बने रहते थे। परन्तु आज वह सूत्र धीर-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। क्या है वह सूत्र? वह सूत्र है, परिवार के

सभी सदस्य प्रतिदिन पन्द्रह मिनट शांत होकर एक साथ बैठें। उस पंद्रह मिनट में चाहे तो ध्यान करो, चाहे प्रार्थना करो। जब आप शांत होकर पंद्रह मिनट बैठते हो तो क्या होता है, आपके विचार धीरे-धीरे कम होते हैं और आपके भीतर का जो आभामंडल है उसका विकास होता है। और धीर-धीरे सामूहिक चेतना एक हो जाती है। जैसे मैं भी

अपने भीतर ओम् का उच्चारण कर रहा हूं, मेरे पास बैठा हुआ दूसरा व्यक्ति भी ओम् का उच्चारण कर रहा है, अन्य आठ व्यक्ति भी वहां बैठे ओम् का उच्चारण कर रहे हैं, तो वह दस गुणा बात हो जाती है।

अपने घर का यह नियम बनाएं कि घर का प्रत्यके सदस्य प्रतिदिन पन्द्रह मिनट एक साथ बैठेगा। सुबह नहीं बैठ सकते तो शाम को समय सुनिश्चित कीजिए! कि सोने से पहले हम सब हाल में एक साथ बैठेंग। और घर में एक जगह सुनिश्चित कर लेनी चाहिए, जिसे हम कहेंगे पवित्र स्थान। वहां पर बैठकर आप अपनी आराधना कीजिए! ध्यान कीजिए! सामायिक कीजिए! यह नियम अवश्य हो कि घर का प्रत्येक सदस्य वहां अवश्य बैठे। देखेंगे आप वह जगह एक मंदिर की महिमा से भर जाएगी। घर में ही मंदिर हो जाएगा। अथवा कहें कि घर ही एक मंदिर बन जाएगा।

अभिवादन/वन्दन

एक साथ बैठें। फिर जब उठें जो प्रत्येक का अभिवादन करें। प्रत्येक से मुखातिब हों! छोटे बड़ों के चरण छूएं! बड़े आशीर्वाद दें!

ऐसा न हो कि छोटे पैर छू रहे हों और बड़े कहीं और देख रहे हों। जो आपके पैर छू रहा है उसकी ओर आप देखिए!

दीवाली आती है तो छोटे बड़ों के पैर छूते हैं। कैसे छूते हैं? एकदम फास्ट। जल्दी-जल्दी। जैसे कि कोई अनिवार्य नियम है और उस नियम को पूरा करना ही है। वहां Speed होती है, पर उस Speed में भाव नहीं होता है।

ऐसा प्रणाम व्यर्थ है। भावपूर्वक झुकें! भावपूर्वक आप आशीर्वाद दें। प्यार से घर का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक से मिले। पांच साल का बच्चा भी है तो उससे भी पूरे भाव से मिलो और पूछो, ठीक हो बच्चे! उससे भी हाथ जोड़कर मिलो!

हाथ जोड़ना नमस्कार है। हाथ जोड़ना भारत की बहुत पुरानी परम्परा है। लेकिन आज यह परंपरा प्रायः विलुप्त हो गई है। आज हम हाथ उन्हें ही जोड़ते हैं जो हमसे बहुत बड़े होंगे। गुरु महाराज आएंगे तो हम हाथ जोड़ेंगे। गुरु महाराज के समक्ष तो सिर झुकाइए! पर वहां भी हाथ जोड़ना रह गया है। जहां हाथ जोड़ना चाहिए वहां कुछ भी नहीं रह गया है।

नमस्कार से खिलता है हृदयचक्र

होना तो यह चाहिए कि मार्ग पर भी कोई मिल जाए तो, नमस्कार। जब आप हाथ जोड़ते हैं तो आपका हृदयचक्र खिलता है।

समझिए इसे! आपका जो फिजिकल हार्ट है वह तो आपके शरीर में बाएं ओर है। वह धड़कता है। एक पम्पिंग सैट है वह। पर वहां न तो कोई करुणा है और न कोई भाव है। जब हम कहते हैं कि मेरे दिल में बड़ा प्रेम है, बहुत करुणा है। तो वह करुणा और प्रेम कहाँ पर है? वह दिल कहाँ पर है? वह है छाती के मध्य नीचे की दिशा में। उसे कहते हैं हृदय-चक्र, अनाहत केन्द्र। हमारा यही हृदय-केन्द्र हमारे चैतन्य का मूल निवास स्थान है।

जब आप में से किसी एक को पुकारा जाता है ... अर्थात् में कहूं कि आप में से प्रवीण कुमार कौन है? तो जो प्रवीण कुमार होगा वह अपने हाथ से अपने हृदय-चक्र का स्पर्श करके बताएगा कि मैं प्रवीण कुमार हूं। आप अपने को बताते हुए अपने हृदय-चक्र का स्पर्श करते हैं। हालांकि उसके लिए आपने कभी कोई प्रशिक्षण नहीं लिया है। तो भी

आपका हाथ आपका परिचय देते हुए आपके हृदय-चक्र को छूता है। क्यों होता है ऐसा? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आप यहां हैं। यहां आपका घर है।

जब आप नमस्कार करते हो तो हृदय-केन्द्र की जो सर्किट है वह पूरी हो जाती है। जब आप नमस्कार करते हो तो सामने वाले व्यक्ति को कोई फायदा हो या न हो, लेकिन आपको बहुत फायदा होता है। जब आपके हाथ जुड़ते हैं तो आपके हृदयकेन्द्र में कुछ विकसित होता है। कुछ खिलता है। भावपूर्ण आप किसी को हाथ जोड़कर देखिए, आपको अपने हृदय-केन्द्र पर बहुत विकास अनुभव होगा।

इसलिए भारत में यह प्रथा रही है कि जब भी दो व्यक्ति मिलें तो वे परस्पर हाथ जोड़कर प्रणाम करें। उससे दोनों व्यक्तियों के हृदय प्रफुल्लित बनते हैं। दोनों के हृदय में परस्पर प्रेम कासंचार होता है।

विलुप्त प्राय : इस परम्परा को हम पुनर्जीवित करें। और अपने घर में ही इस परम्परा को शुरू करें। पहले पन्द्रह मिनट साथ बैठें। उठते हुए परस्पर अभिवादन करें। देखना आप, बहुत फर्क आ जाएगा। घर स्वर्ग में बदल जाएगा।

प्रणाम का परिणाम

घर में अनेक सदस्य हैं। यदा-कदा मन-मुटाव हो जाना बहुत स्वाभाविक है। उस मनमुटाव को मिटाने का कोई उपक्रम न किया जाए तो वह एक गांठ के रूप में दो हृदयों में स्थापित हो जाता है। प्रतिदिन साथ बैठना और उठते हुए परस्पर अभिवादन करना वह उपक्रम है जो आपके हृदय में किसी गांठ को निर्मित नहीं होने देगा।

मुझे याद है, मद्रास में एक भाई हैं। उन्होंने इस सूत्र से अपने घर को जीवंत स्वर्ग बना लिया है। कोई पंद्रह वर्ष पहले उनके छोटे भाई से उनकी अनबन हो गई थी। पन्द्रह वर्षों से दोनों भाइयों में

परस्पर बातचीत भी बन्द थी। एक बार किसी अत्यावश्क कार्यवश छोटे भाई को उनके घर आना पड़ा। संयोग से यह वही समय था जब परिवार के सभी सदस्य साथ-साथ बैठकर ध्यान कर रहे थे। छोटे भाई को भी उनके साथ बैठ जाना पड़ा। ध्यान समाप्ति पर सभी ने परस्पर अभिवादन किया। बड़े भाई ने छोटे भाई का भी अभिवादन किया। और उस अभिवाद से पन्द्रह वर्षों से सुदृढ़ मनोभेद की दीवार भरभरा कर ढह गई। छोटा भाई बड़े भाई के पैरों से लिपटकर रो पड़ा। पन्द्रह वर्ष की गांठ बर्फ बनकर क्षण भर में ही पिघल गई। बड़े भाई के छोटे-छोटे बच्चों ने जब चाचा को प्रणाम किया तो चाचा के सुख का पार न रहा। उस छोटे भाई ने आकर मुझसे कहा, महाराज! आज जिस स्वर्गीय सुख को मैंने अनुभव किया है वह मेरे जीवन का इकलौता अनुभव है। आपके उपदेश ने मेरे भाई के घर को तो स्वर्ग बनाया ही, मेरे जीवन को भी स्वर्गीय सुख-स्पंदन से भर दिया।

संबंधों में माधुर्य है तो घर न केवल घर है बल्कि घर एक मंदिर है, एक स्वर्ग है। माधुर्य नहीं है तो घर एक वीराना है, एक खण्डहर है, जहां भय है, चील और घूकों की चीत्कारें हैं।

संबंधों में माधुर्य के कुछ छोटे-छोटे सूत्र मैंने कहे हैं। इन सूत्रों को आजमाइए। मुझे विश्वास है कि उससे आपका घर अवश्य ही सूत्रबद्ध होगा, संबंध स्नेह सूत्र में बन्धेंगे। परिवार मौक्तिक माला बन जाएगा।

समता : स्वभाव में स्थिरता

तृतीय प्रश्न - आपने अपने प्रवचन 'आ घर लौट चलें' में एक प्रोफेसर महिला का उदाहरण दिया है और दुख को दूर करने के लिए आंसुओं का समर्थन किया है। दुखमुक्ति के लिए आंसू ही उपाय हैं तो फिर समताधर्म की उपयोगिता ही क्या रह जाएगी? समता का तो अर्थ ही यह है कि सुख में हंसना नहीं और दुख में रोना नहीं। कृपया इस विरोधाभास को समझाइए!

समाधान - समताभाव का अर्थ क्या होता है? समताभाव किसे कहते हैं? अक्सर जब हम कहते हैं कि राग नहीं करो, द्वेष नहीं करो, समता भाव बनाकर रखो, तो हम क्या समझते है, पत्थर जैसा चेहरा करके बैठ जाओ। न तो हंसो और न रोओ। समता भाव इसे नहीं कहते हैं। समता भाव का सीधा और सरल अर्थ है कि प्रतिक्षण आप आनन्दित रहो। आपका चेहरा आनन्द में रहे। क्योंकि आनन्द आपका स्वभाव है। समता का अर्थ है अपने स्वभाव में, अपने घर में लौट करके आ जाओ। आपका स्वभाव है शांति और आनन्द। प्रतिक्षण आनन्द और शांति में रहना यही समता भाव का अर्थ है।

अपने प्रवचन में मैंने रोने का समर्थन जिस संदर्थ में किया उस संदर्भ में रोना एक उपाय है। यदि आप भीतर से बहुत दुखी हैं, आपको रोना आ रहा है, तो उस रोने को दबान की कोशिश न करें। भीतर से यह अनुभव हो जाना कि रोने में क्या रखा है और रोना न आए यह एक बात है। और अनुभव तो कुछ नहीं हुआ है, भीतर से रोना तो आ ही रहा है, लेकिन आपने सुन रखा है कि रोना ठीक नहीं है, इसलिए आप रोने को दबाने की कोशिश करते हैं तो वह बिल्कुल दूसरी बात है। रोने को दबाना अलग बात है और रोने से पार हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है।

इसे ऐसे समझें! आप अपने भीतर इतने आनन्द में चले गए हैं कि आपको गुस्सा आता ही नहीं है। यह एक बात है। और दूसरी बात यह है कि आपको गुस्सा तो आता है पर आपने सुन रखा है कि गुस्सा शैतान है, कि गुस्सा नहीं करना चाहिए। इसलिए आप गुस्से को दबा देते हो। यह प्रथम बात से बिल्कुल भिन्न बात है। अगर भीतर से गुस्सा आता ही नहीं है तब तो आप परम सुखी हो गए। लेकिन भीतर से तो बहुत गुस्सा आ रहा है, लेकिन बाहर से आप ऐसा दिखावा करते हैं कि में तो परम आनन्द में हूं तो कितने दिन बाद से चेहरा ओढ़ के रखोगे। जरा विचार कीजिए!

आपके भीतर गुस्सा नहीं है तो बाहर की घटनाएं आपको विचलित नहीं कर सकती हैं। भीतर गुस्सा है तो बाहर घटनाएं रहें न रहें, आप स्वयं घटनाओं का निर्माण कर लेंगे। आपके भीतर रहा हुआ क्रोध स्वयं घटनाओं का निर्माण कर लेगा और प्रगट हो जाएगा।

दुख के आंसू : आनंद के आंसू

आप भीतर दुखी हैं तो आपका वह दुख आंसू बनकर बहेगा। वह बहे तो बहने दीजिए! आंसू कोई बुरी बात नहीं हैं। यह एक प्राकृतिक सिस्टम है। आंसू बहें तो बहने दीजिए! उन्हें दबाइए मत! दबाएंगे तो शरीर पर उसका रिएक्शन होगा। आंसू किसी अन्य रूप को धारण कर शरीर पर प्रगट हो जाएंगे।

कई लोग ध्यान करते हैं तो उनकी आंखों से अचानक आंसू गिरने लगते हैं। उस समय उनके मन के भीतर कोई दुख नहीं होता है, कोई पीड़ा नहीं होती है, फिर भी आंखों से आंसू आते हैं। कहाँ से आते हैं वे आंसू? पहले बहुत सारे आंसू आपने जमा करके रखे हैं, जिनको आपने पकड़कर रखा है, बांध कर रखा है, ध्यान के समय आप Relax होते हो, शांत होते हो, तो भीतर का जो कचरा है वह अपने आप बाहर बहता है। उसे बह जाने दो।

मेरे कहने का अर्थ इतना ही है कि भीतर आंसू संचित मत करो। भीतर आंसू हैं तो उनका बह जाना ही श्रेष्ठ है। हां, भीतर से आप जगे हुए हैं और बाह्य घटनाएं आपको प्रभावित बनाती ही नहीं हैं, और आपने सच में जान लिया है कि मृत्यु एक अवश्यंभावी और साधारण घटना है, उससे भीतर जगे उस बोध से समता का जन्म होता है। जब समता जागती है तो आंसू विदा हो जाते हैं। फिर उनके अर्जन और विसर्जन का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है।

यथार्थ दर्शन : सम्यग्दर्शन

प्रश्न-संवत्सरी और सम्यगदर्शन के अंतर्सम्बन्ध पर प्रकाश डालने की कृपा करें!

समाधान-हम अपने जीवन में जो पूर्ण आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, जो पूर्ण शांति प्राप्त करना चाहते हैं, जिसे हमारे आगमों में मोक्ष और मुक्ति कहा गया है, उसे पाने के लिए जो मुल आधार है, वह है सम्यग्दर्शन। अर्थात् दृष्टि का सम्यक् हो जाना।

सम्यग्दर्शन का आधार क्या है? कब हमारी दृष्टि सम्यक् होगी? हमारी दृष्टि सम्यक् तब होगी जब हमारे भीतर रहे हुए क्रोध, मान, माया और लोभ शनैःशनैः क्षीण बन जाएंगे। जैसे-जैसे कषाय क्षीण होते हैं वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन संपुष्ट बनता है। और जैसे-जैसे सम्यग्दर्शन संपुष्ट बनता है वैसे-वैसे क्रोधादि कषाय शांत होते चले जाते हैं। दोनों का अस्तित्व एक साथ सुदीर्घ यात्रा नहीं कर सकता है।

आगमों में उल्लेख है कि एक व्यक्ति यदि अपने क्रोध को एक वर्ष से भी लंबा खींच ले तो उसका सम्यग्दर्शन चला जाता है। वह जैन

से अजैन बन जाता है। बाहर से फिर भले ही वह अपने नाम के साथ जैन शब्द लिखे, लेकिन अंतःकरण के तल पर वह जैन नहीं रह जाएगा। इसीलिए महापुरुषों ने वर्ष भर में एक दिन ऐसा रखा है जिस दिन आप अपने वर्ष भर के क्रोध, मान, माया और लोभ की निरंतरता को, उसकी धारा को रोक दो। एक वर्ष से आगे न जाने दो।

एक वर्ष से आगे जाने का अर्थ क्या होगा? जैसे कि किसी अमित नाम के व्यक्ति से मेरी अनबन हो गई। हमारे बीच में एक क्रोध का भाव आ गया, वैर का, दुश्मनी का भाव आ गया। दो महीने हो गए दुश्मनी को, चार महीने हो गए, छह महीने हो गए, आठ महीने हो गए, ग्यारह महीने हो गए, और मेरी दुश्मनी उस व्यक्ति के साथ यदि बारह महीने से ऊपर चली जाती है तो वह जो वैर की गांठ मैंने भीतर बांधकर रखी थी, वह यदि मैंने बारह महीने के पहले खोली नहीं तो मैं जैन से अजैन हो जाऊंगा।

यह क्रम हमारे आगमों में बताया गया है। पहला है क्रोध। दूसरा है अहंकार। अहंकार यानि क्या? अंहकार है तुलना में, कि मैं उससे ज्यादा Superior हूं। या तो मैं उससे हीन हूं। आपके भीतर या तो अहं भावना हो सकती है या तो हीन भावना हो सकती है। आत्मविश्लेषण कर लें। हीन भावना अथवा अहं भावना की ग्रन्थि एक वर्ष से ऊपर चली गई तो भी सम्यग्दर्शन चला जाएगा।

तृतीय है कपट। जैसे किसी के साथ आपने विश्वासघात किया। आपने किसी के विश्वास को तोड़ा। किसी को आपने कहा कुछ और किया कुछ। अगर आपकी माया की यह ग्रन्थी निरंतर एक वर्ष से ऊपर चली गई तो भी सम्यग्दर्शन चला जाएगा।

चतुर्थ है लोभ। तीव्र लोभ भी एक बहुत बड़ी गांठ है। यह गांठ भी एक वर्ष से ऊपर चली जाती है तो हम सम्यग्दर्शन से फिसल जाते हैं।

आत्मान्वेषण का महापर्व : सम्वत्सरी

सम्वत्सरी का दिन आपके जैनत्व की कसौटी है। अगर आप सच में जिन के उपासक जैन बने रहना चाहते हो, अर्थात् वस्तुतः आप एक सच्चे मनुष्य बने रहना चाहते हो, जो आनन्द और शांति से भरा हुआ हो, तो सम्वत्सरी का दिन है कि आप आत्म-पड़ताल कर लो। देख लो कि क्या आपका क्रोध एक वर्ष से ऊपर तो नहीं जा रहा है। कोई ऐसा व्यक्ति तो नहीं है जिससे आपका वैर एक वर्ष से लम्बा हो गया हो। अगर है तो सम्वत्सरी के प्रसंग पर उसके पास जाओ और उससे गले मिलो। उससे क्षमापना करो। वैर का विसर्जन कर दो। अपने हृदय में खड़ी दीवार को गिरा दो। यदि एक वर्ष की अवधि पर भी आप उस दीवार को गिरा नहीं पाते हो तो वह दीवार सुदृढ़ से सुदृढ़तम बनकर जन्म-जन्मान्तरों तक चलती रहेगी।

सम्वत्सरी आत्म-विश्लेषण, आत्मान्वेषण और आत्मपरीक्षण का महापर्व है। अन्य जितने भी पर्व हैं जगत में वे खा-पीकर मनाए जाते हैं। मौज-मस्ती पूर्वक मनाए जाते हैं। सम्वत्सरी उन समस्त पर्वों से विपरीत पर्व है। सम्वत्सरी के दिन किसी को नहीं देखा जाता है। केवल और केवल अपने आप को देखा जाता है। आत्मान्वेषण किया जाता है सम्वत्सरी के दिन। आत्मशोध की जाती है कि वर्ष भर में मैं कहाँ-कहाँ फिसला हूं, कि किन-किन लोगों के मैंने हृदय आहत किए हैं, कि कहाँ-कहाँ मैं असत्य, फरेब और लालच में बहा हूं। अपने को देखकर, अपने अपराधों को देखकर उन अपराधों का प्रक्षालन करना है। आत्म-अदालत में खड़े होकर अपने वर्ष भर का हिसाब देना है। आत्म-स्वीकार करना है, अपने आप से confess करना है। सम्वत्सरी वर्षभर का प्रतिक्रमण है। जहां-जहां आप वर्ष भर में अतिक्रमित हुए हैं, व्यतिक्रमित हुए हैं, उन-उन क्षणों को पकड़िए! उन क्षणों में जो मैल आपने अर्जित किया है, सच्चे हृदय से उस मैल का विसर्जन कीजिए! इससे आप निर्भार हो जाएंगे। हल्के हो जाएंगे। सहज-स्वाभाविक आनन्द से भर जाएंगे। वही आनन्द आपका स्वभाव है।

जैन धर्म दिवाकर, आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज : शब्द–चित्र

जन्म भूमि	-	राहों
पिता	-	लाला मनसारामजी चौपड़ा
माता	-	श्रीमती परमेश्वरी देवी
वंश	-	क्षत्रिय
जन्म	-	विक्रम सं. 1939 भाद्र सुदि वामन द्वादशी (12)
दीक्षा	-	वि.सं. 1951 आषाढ़ शुक्ल 5
दीक्षा स्थल	-	बनूड़ (पटियाला)
दीक्षा गुरु	-	मुनि श्री सालिगराम जी महाराज
विद्यागुरु	-	आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज (पितामह गुरु)
साहित्य सृजन	-	अनुवाद, संकलन-सम्पादन-लेखन द्वारा लगभग 60 ग्रन्थ
आगम अध्यापन	-	शताधिक साधु-साध्वियों को।
कुशल प्रवचनकार	-	तीस वर्ष से अधिक काल तक।
आचार्य पद	-	अ.भा. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ सादड़ी (मारवाड) 2009 वैशाख शुक्ल
संयम काल	-	67 वर्ष लगभग।
स्वर्गवास	-	वि.सं. 2019 माघवदि 9 (ई. 1962) लुधियाना।
आयु	-	79 वर्ष 8 मास, ढाई घंटे।
विहार क्षेत्र	-	पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि।
स्वभाव	-	विनम्र-शांत-गंभीर, प्रशस्त विनोद।
समाज कार्य	-	नारी शिक्षण प्रोत्साहन स्वरूप कन्या महाविद्यालय एवं पुस्तकालय आदि की प्रेरणा।

जैनभूषण, पंजाब केसरी, बहुश्रुत, महाश्रमण, गुरुदेव श्री ज्ञान मुनि जी महाराज : शब्द–चित्र

जन्म भूमि - साहोकी (पंजाब)

जन्म तिथि - वि.सं. 1979 वैशाख शुक्ल 3 (अक्षय तृतीया)

दीक्षा - वि.सं. 1993 वैशाख शुक्ल 13

दीक्षा स्थल - रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान)

गुरुदेव - आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज

अध्ययन - प्राकृत, संस्कृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के जानकार तथा दर्शन एवं व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, भारतीय धर्मों के गहन अभ्यासी।

सृजन - हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण पर भाष्य, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना आदि कई आगमों पर बृहद् टीका लेखन तथा तीस से अधिक ग्रन्थों के लेखक।

प्रेरणा - विभिन्न स्थानकों, विद्यालयों, औषधालयों, सिलाई केन्द्रों के प्रेरणा-स्त्रोत।

विशेष - आपश्री निर्भीक वक्ता थे, सिद्धहस्त लेखक एवं कवि थे। समन्वय तथा शान्तिपूर्ण क्रान्त जीवन के मंगलपथ पर बढ़ने वाले धर्मनेता, विचारक, समाज सुधारक एवं आत्मदर्शन की गहराई में पहुंचे हुए साथक थे। पंजाब तथा भारत के विभिन्न अंचलों में बसे हजारों जैन-जैनेतर परिवारों में आपके प्रति गहरी श्रद्धा एवं भक्ति है।

आप स्थानकवासी जैन समाज के उन गिने-चुने प्रभावशाली संतों में प्रमुख थे जिनका वाणी-व्यवहार सदा ही सत्य का समर्थक रहा है। जिनका नेतृत्व समाज को सुखद, संरक्षक और प्रगति पथ पर बढ़ाने वाला रहा है।

स्वर्गारोहण - मण्डी गोविन्दगढ़ (पंजाब)
23 अप्रैल, 2003 (रात 11:30 बजे)

आत्मज्ञानी सद्गुरूदेव युग प्रधान, आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज : शब्द–चित्र

जन्म स्थान	- मलौटमंडी, जिला-फरीदकोट (पंजाब)
जन्म	- 18 सितम्बर, 1942 (भादवा सुदी नवमी, वि.सं. 1999)
माता	- स्व. श्रीमती विद्यादेवी जैन
पिता	- स्व. श्री चिरंजीलाल जी जैन
वर्ण	- वैश्य ओसवाल
वंश	- भाबू
दीक्षा	- 17 मई, 1972 समय : 12:00 बजे (वैशाख सुदी 5, वि.सं. 2029)
दीक्षा स्थान	- मलौटमण्डी (पंजाब)
दीक्षा गुरु	- बहुश्रुत, जैनागमरत्नाकर राष्ट्रसंत श्रमणसंघीय सलाहकार श्री ज्ञानमुनि जी महाराज
शिष्य-संपदा	- श्री शिरीष मुनि जी, श्री शुभममुनि जी, श्री शमितमुनि जी
प्रशिष्य	- श्री निशांत मुनि जी, श्री शाश्वत मुनि जी
युवाचार्य पद	- 13 मई, 1987, (वैशाख सुदी 15, वि.सं. 2044) पूना, महाराष्ट्र
आचार्य पदारोहण	- 9 जून, 1999, (ज्येष्ठ वदी 11, वि.सं. 2056) अहमदनगर, महाराष्ट्र
चादर महोत्सव	- 7 मई, 2001, (वैशाख सुदी 15, वि.सं. 2058) ऋषभ विहार, दिल्ली में
विचरण	- पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, जम्मु कश्मीर, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात आदि
अध्ययन	- डबल एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्, आगमों का गहन-गंभीर अध्ययन, ध्यान-योग-साधना में विशेष शोध कार्य
एवार्ड	- 1) साईं मियां मीर इंटरनेशनल एवार्ड-2005 2) महात्मा गांधी सर्विस एवार्ड-2006 3) सर्व धर्म महासंघ के मुख्य संरक्षक
उपाधि	- युगपुरुष, राष्ट्रसंत, योगिराज आदि

आत्म योगी, श्रमणसंघीय मंत्री
श्री शिरीष मुनि जी महाराज : शब्द–चित्र

जन्म स्थान	- नाई (उदयपर, राजस्थान)
जन्मतिथि	- 19-02-1964
माता	- श्रीमती सोहनबाई
पिता	- श्रीमान ख्यालीलाल जी कोठारी
वंश, गौत्र	- ओसवाल, कोठारी द्वारा।
दीक्षार्थ प्रेरण	- दादीजी मोहन बाई कोठारी द्वारा।
दीक्षा तिथि	- 7 मई, 1990
दीक्षा स्थल	- यादगिरी (कर्नाटक)
गुरु	- श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य श्री शिवमुनि जी महाराज
शिक्षा	- एम.ए. (हिन्दी साहित्य)
अध्ययन	- आगमों का गहन गंभीर अध्ययन, जैनेतर दर्शनों में सफल प्रवेश तथा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत, मराठी, गुजराती भाषाविद्।
अलंकरण	- श्रमणसंधीय मंत्री, श्रमणश्रेष्ठ कर्मठयोगी, साधुरत्न
शिष्य सम्पदा	- श्री निशांत मुनि जी, श्री शाश्वत मुनि जी
विशेष प्रेरणादायी कार्य	- ध्यान योग साधना शिविरों का संचालन, बाल-संस्कार शिविरों और स्वाध्याय-शिविरों के कुशल संचालक। आचार्य श्री के अनन्य सहयोगी।

साधक श्री शैलेश कुमार जी : एक परिचय

साधक श्री शैलेश कुमार जी का जीवन एक प्रयोगात्मक जीवन है। आप सत्य के साधक हैं। अनुशासनप्रिय व्यक्तित्व हैं। स्वयं अनुशासन मे रहते हुए समाज, धर्म एवं साधना में किस प्रकार अनुशासन लाना चाहिए इस हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। आपका जीवन खुली किताब की तरह है "जहा अंतो तहा बहो" जैसे भीतर हैं वैसे ही बाहर हैं। कथनी और करनी एक है। स्पष्ट वक्ता हैं। जिस किसी भी कार्य को हाथ में लेते हैं तो 100 प्रतिशत रूचि लेकर उसे पूर्ण करते हैं। मिलनसारिता, सहृदयता, आत्मीयता आदि गुणों से परिपूर्ण हैं। आप एक उच्च कोटि के साधक हैं। आचार्य भगवंत पूज्य श्री आत्माराम जी म.सा. एवं आचार्य भगवंत पूज्य श्री शिवमुनि जी म. का पूर्ण आशीर्वाद एवं जिन-शासन की आप पर महती कृपा है।

जन्म स्थान	:	मुम्बई
माता	:	श्रीमती सरला देवी मेहता
पिता	:	श्री चन्द्रकान्त जी मेहता
शिक्षण	:	आगमों का गहन अध्ययन, ध्यान एवं योग-साधना में विशेष शोध कार्य
भाषा ज्ञान	:	गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का ज्ञान।

आप एक गृहयोगी साधक हैं। घर और समाज के मध्य में रहते हुए भी आप स्व-पर कल्याण के श्रेयपथ पर यात्राशील हैं। आपके कुशल मार्गदर्शन में हजारों लोगों ने स्वस्थ और सफल जीवन जीने का सन्मार्ग प्राप्त किया है।

आत्म-शिव साहित्य

आचार्य-द्वय रचित शब्द-संसार का सूचिपत्र

श्री आचारांग सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्कन्ध)

पृष्ठ संख्या : 936

सहयोग राशि : 500 रु.

(द्वितीय श्रुतस्कन्ध) श्री आचारांग सूत्रम्

पृष्ठ संख्या : 526

सहयोग राशि : 400 रु.

दो श्रुत-स्कन्धों के 25 अध्यायों में सुगुंफित ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना रूप जैन आचार के शाश्वत स्वरूप को अभिव्यंजित-व्याख्यायित करने वाला द्वादशांगी का प्रथम अंग। आगम-वाड.मय के आधुनिक अभयदेव आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज की अंतःप्रभा और प्रज्ञा की छाया तथा शिवाचार्य के अनुभव गम्य अध्यात्मसार का सहकार पाकर आचारांग की विशाल और अगाध ज्ञान-राशि सरल और मधुमिष्ठ भाषा-शैली में अवतरित हुई है। दो जिल्दों में प्रस्तुत यह संस्करण आचारांग के कथ्य को हस्तामलकवत् प्रकट करता है।

श्री स्थानांग सूत्रम् (प्रथम भाग)

पृष्ठ संख्या : 1248

सहयोग राशि : 500 रु.

(द्वितीय भाग) श्री स्थानांग सूत्रम्

पृष्ठ संख्या : 884

सहयोग राशि : 400 रु.

जीव, अजीव, स्व-सिद्धान्त, पर-सिद्धान्त, लोक, अलोक, पर्वत, द्वीप प्रभृति विभिन्न विषयों के साथ-साथ दार्शनिक चर्चाओं का विशद व्याख्यान करने वाला द्वादशांगी का तृतीय अंगागम। विषय और सामग्री की विशालता को देखते हुए इस आगम को दो खण्डों में प्रकाशित किया गया है।

श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 666, सहयोग राशि : 500 रु.

प्रथम श्रुतस्कंध में 19 ज्ञात-कथाओं तथा द्वितीय श्रुतस्कंध में 206 धर्म कथाओं के माध्यम से अध्यात्म का अमर संदेश देने वाला छठा अंगागम।

प्रश्नव्याकरण सूत्र

पृष्ठ सं. : 892, सहयोग राशि : 40 रु.

इस दशम अंग में हिंसा आदि पांच पापस्थानों तथा अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का विशद व्याख्यान संकलित है।

श्री उपासकदशांग सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 400, सहयोग राशि : 300 रु.

इस आगम में तीर्थंकर महावीर के दस अग्रगण्य और लोकमान्य श्रमणोपासकों के पारिवारिक, व्यावसायिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन का सुसम्बद्ध सांगोपांग विवरण उपलब्ध है।

श्री अन्तकृद्दशांग सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 496, सहयोग राशि : 300 रु.

90 अंतकृत् (उसी भव में मोक्ष प्राप्त करने वाले) आत्मजयी महान् साधकों की लोमहर्षक साधनाओं का विहंगम विवरण प्रस्तुत करने वाला आगम। इस आगम का पर्युषणों में सर्वत्र वांचन होता है।

श्री अनुत्तरौपपातिक सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 100, सहयोग राशि : 100 रु.

अनुत्तर विमानों में उत्पन्न तीर्थंकर-संस्तुत धन्य अणगार सहित 33 महान साधकों की संयमीय गाथा का चित्रण प्रस्तुत करने वाला नवम अंग।

श्री विपाक सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 1024, सहयोग राशि : 500 रु.

पुण्य के मधुफल और पाप के दुष्फल का विराट और विशाल कथात्मक व्याख्यान करने वाला द्वादशांगी का ग्यारहवां अंग।

श्री उत्तराध्ययन सूत्रम्

(प्रथम भाग-1 से 13 अध्ययन) पृष्ठ सं. : 480, सहयोग राशि : 300 रु.

(द्वितीय भाग-14 से 25 अध्ययन) पृष्ठ सं. : 492, सहयोग राशि : 300 रु.

(तृतीय भाग-26 से 36 अध्ययन) पृष्ठ सं. : 496, सहयोग राशि : 300 रु.

जैन आचार, विचार, धर्म और दर्शन संबंधी कथा प्रधान उपदेशात्मक शैली के इस आगम का जैन परम्परा में वही स्थान है जो वैदिकों में भगवद्गीता, ईसाइयों में बाईबल, और मुसलमानों में कुरान का है। विषय की विशालता और व्याख्या की विशदता को दृष्टिपथ में रखते हुए इस आगम को तीन भागों-तीन जिल्दों में प्रस्तुत किया गया है।

श्री निरयावलिका सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 440, सहयोग राशि : 300 रु.

कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा-उक्त पांच उपांगों का संयुक्त संस्करण। विभिन्न अंगों के उपांग रूप इस संयुक्त संस्करण में कुल 52 जीवों का जीवन-दर्शन वर्णित है।

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 498, सहयोग राशि : 300 रु.

श्रमण के विशद आचार-विचार का संवाहक चार मूल आगमों में प्रथम आगम। शिशु हेतु मातृ दुग्ध के तुल्य नवदीक्षित श्रमणों के संयम को पुष्ट करने वाला यह आगम सर्वप्रथम पठनीय माना जाता है।

श्री नन्दी सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 536, सहयोग राशि : 400 रु.

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान का विशद विवेचन करने वाला ज्ञानाचार का प्रतिनिधि मूल आगम।

श्री दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 496, सहयोग राशि : 300 रु.

असमाधि, आशातना, शबल दोष, गणि-संपद्. चित्त समाधि, उपासक प्रतिमा, श्रमण प्रतिमा आदि विविध विषयों के स्वरूप को व्याख्यायित-विवेचित करने वाला आगम।

श्री अनुयोग द्वार सूत्र

(पूर्वार्द्ध)

पृष्ठ संख्या : 836,

सहयोग राशि : 500 रु.

श्री अनुयोग द्वार सूत्र

(उत्तरार्द्ध)

पृष्ठ संख्या : 992,

सहयोग राशि : 500 रु.

नय, निक्षेप, प्रमाण आदि का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करने वाला दो खण्डों में प्रकाशित विशाल आगम।

श्री आवश्यक सूत्रम् (श्रमण प्रतिक्रमण)

पृष्ठ सं. : 200, सहयोग राशि : 50 रु.

प्रतिदिन पठनीय-आराधनीय सूत्र। यह सूत्र बाहर से भीतर लौटने का विधान-कर्त्ता होने से प्रतिक्रमण भी कहलाता है।

श्री आवश्यक सूत्रम् (श्रावक प्रतिक्रमण)

पृष्ठ सं. : 192, सहयोग राशि : 40 रु.

प्रतिदिन पठनीय-आराधनीय सूत्र। यह सूत्र बाहर से भीतर लौटने का विधान-कर्त्ता होने से प्रतिक्रमण भी कहलाता है। परिशिष्ट में श्रावक व्रतों के ग्रहण करने की विधि संयोजित की गई है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 632, सहयोग राशि : 200 रु.

मूल, अन्वयार्थ और मूलार्थ के साथ श्री उत्तराध्ययन सूत्र के संपूर्ण 36 अध्ययनों की संयुक्त प्रस्तुति।

श्री अन्तकृद्दशांग सूत्रम्

पृष्ठ सं. : 248, सहयोग राशि : 50 रु.

आचार्य श्री कृत व्याख्या-प्रधान श्री अंतकृद्दशांग सूत्रम् से संकलित मूल, अन्वयार्थ और मूलार्थ को प्रस्तुत करने वाला पर्युषणोपयोगी संस्करण।

तत्वार्थ सूत्र जैनागम समन्वय

पृष्ठ सं. : 304, सहयोग राशि : 100 रु.

जैन धर्म की चारों संप्रदायों में मान्य और समादृत "तत्वार्थ सूत्र" के प्रत्येक सूत्र के आगमीय आधार को प्रकाशित करने वाला अपनी कोटि का प्रथम ग्रन्थ।

जैन ज्ञान प्रकाश

पृष्ठ सं. : 616, सहयोग राशि : 200 रु.

जैन दर्शन और जैन सिद्धांतों को प्रकाशित करने वाला प्रश्नोत्तर शैली का एक बृहद्-ग्रंथ।

जैन तत्व कलिका विकास

पृष्ठ सं. : 384, सहयोग राशि : 75 रु.

जैन तत्व विद्या को सरल और तरल शब्दावली में प्रस्तुत करने वाला एक श्रेष्ठ ग्रन्थ। नौ कलिकाओं में विभक्त यह प्रामाणिक ग्रन्थ अपने पृष्ठों में जैन धर्म और दर्शन की विशाल ज्ञान-राशि संचित किए हुए है।

जिन शासनम्

पृष्ठ सं. : 120, सहयोग राशि : 40 रु.

जैन तत्व मीमांसा की सरल शब्दावली में प्रस्तुति। जैन धर्म, जैन श्रमण, जैन श्रावक, जैन आचार्य तथा संघ समन्वय के साथ-साथ नौ तत्वों और आहार-विवेक पर प्रकाश डालने वाली अनुपम कृति।

अध्यात्म सार

पृष्ठ सं. : 160, सहयोग राशि : 60 रु.

एक आध्यात्मिक स्वानुभूत अमृत का कोष, जिसमें आचारांग के ध्यान और साधना संबंधी सूत्रों का अंतःस्वरूप उद्घाटित हुआ है। आचारांग जैसे गुरु-गम्भीर आगम में प्रवेश को सुगम बनाने वाला एक बृहद् आलेख।

शोध प्रबन्ध

भारतीय धर्मों में मुक्ति

पृष्ठ सं. : 260, सहयोग राशि : 220 रु.

विविध भारतीय धर्मों में मोक्ष के स्वरूप को स्पष्ट करके जैन धर्म के मोक्ष सम्बन्धी विशिष्ट संदर्भों को प्रस्तुत करने वाला प्रशंसित ग्रन्थ।

आ घर लौट चलें

जीवन सूत्र

पृष्ठ सं. : 224, सहयोग राशि : 100 रु.

संस्कार, शिक्षा, स्वर्णिम वृद्धत्व, तनाव मुक्ति, समय-संयोजना और समाधान की छाया सहित अपने घर लौटने के वैज्ञानिक सूत्रों का संकलन।

योग मन संस्कार

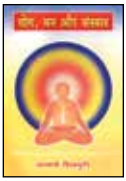

पृष्ठ सं. : 136, सहयोग राशि : 50 रु.

सम्यक् आहार, आचार, विचार और बाल-संस्कार संबंधी विशद चिन्तन, तथा योग, मन और प्रतिक्रमण के विराट् स्वरूप पर सरल शब्दावली में गहन मनन की प्रस्तुति।

ध्यान साहित्य

ध्यान : एक दिव्य साधना

पृष्ठ सं. : 256, सहयोग राशि : 120 रु.

जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म-शास्त्रों के ध्यान संबंधी सूत्रों तथा महर्षि रमण, अरविन्द प्रभृति योगाचार्यों की ध्यान-पद्धतियों को सुश्रृंखलित लेखमाला में प्रस्तुत करने वाला एक कालजयी ग्रन्थ।

ध्यान - पथ

पृष्ठ सं. : 176, सहयोग राशि : 60 रु.

ध्यान की विधि और उद्देश्य के साथ-साथ धर्म, सदगुरु, शरणभाव, ओंकार, सामायिक मौन और प्रतिक्रमण प्रभृति आध्यात्मिक बिन्दुओं के अंतः स्वरूप को स्पष्ट करने वाली एक संपूर्ण पुस्तक

जैनागमों में अष्टांग योग

पृष्ठ सं. : 154, सहयोग राशि : 60 रु.

आराम साहित्य में यत्र-तत्र प्रकीर्ण अष्टांग योग के बीज सूत्रों को प्रकट करने वाला अन्वेषण प्रधान ग्रन्थ। महर्षि पतंजलि कृत "योग सूत्र" से तुलनात्मक अध्ययन।

आत्म ध्यान : स्वरूप और साधना

पृष्ठ सं. : 112, सहयोग राशि : 25 रु.

आत्म-ध्यान के साधनात्मक स्वरूप की प्रायोगिक प्रस्तुति। इस पुस्तक में बेसिक कोर्स के पांच प्रवचन सरल भाषा में दिए गये हैं। ध्यान में प्रवेश करने वाले मुमुक्षुओं के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

वीतराग दर्शन

पृष्ठ सं. : 104, सहयोग राशि : 20 रु.

आत्म-ध्यान साधना के बेसिक शिविर की सम्पूर्ण विवरण आत्मयोगी, श्रमण संघीय मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज।

वीतराग विज्ञान (भाग-1)

पृष्ठ सं. : 170

सहयोग राशि : 30 रु.

(भाग-2) वीतराग विज्ञान

पृष्ठ सं. : 164

सहयोग राशि : 30 रु.

वीतराग सामायिक का समग्र स्वरूप प्रकट करने वाली तथा दैनिक आराधना में आत्मज्ञान को पुष्ट करने वाली पुस्तिका। साथ ही शिवाचार्य के साधनात्मक समाधान, अरिहंत वाणी और भक्ति-गीतों की सहसंयोजना भी।

ध्यान से ज्ञान (सी.डी. सहित)

पृष्ठ सं. : 146, सहयोग राशि : 100 रु.

आत्मध्यान साधना का एक दिवसीय बेसिक शिविर का पूर्ण विवरण है। सी.डी. भी पुस्तक के साथ है।

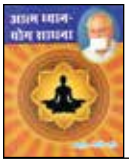

आत्म ध्यान - योग साधना

पृष्ठ सं. : 96, सहयोग राशि : 10 रु.

जीवन तत्व, यौवन तत्व, तथा योग के कई विशिष्ट आसनों को प्रस्तुत करने वाली सचित्र पुस्तिका।

सिद्धालय का द्वार : समाधि

पृष्ठ सं. : 72, सहयोग राशि : 10 रु.

शिवाचार्य द्वारा अन्वेषित ध्यान-विधि के प्रारंभिक चरणों को प्रयोग-सहित विश्लेषित करने वाली लघु-पुस्तिका। भाव प्रतिक्रमण की भूमिका एवं अरिहंत वाणी का सह संयोजन भी इस पुस्तक में दिया गया है।

अहासुहं देवाणुप्पिया

प्रवचन साहित्य

पृष्ठ सं. : 248, सहयोग राशि : 100 रु.

तीर्थंकर महावीर की मूल वाणी श्री अंतकृद्दशांग सूत्र पर नौ प्रवचनों की तात्विक, सारगर्भित और सरस व्याख्यान-शंखला।

संबुज्झह किं ण बुज्झह

पृष्ठ सं. : 256, सहयोग राशि : 50 रु.

"जागो! जागते क्यों नहीं हो! संबोधि का पुनः प्राप्त होना सुलभ नहीं है।" प्रभु ऋषभ के इस शाश्वत-संदेश को वर्तमान संदर्भों में विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से सामयिक स्वरूप देने वाली पुस्तक।

नदी नाव संजोग

पृष्ठ सं. : 200, सहयोग राशि : 60 रु.

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, भावना, योग, संवेग, निर्वेद, अवैर, अप्रमाद, मैत्रीभाव आदि विभिन्न आध्यात्मिक विषयों के अंतःस्वरूप को प्रकाशित करने वाली एक मूल्य-प्रधान कृति।

मा पमायए

पृष्ठ सं. : 200, सहयोग राशि : 60 रु.

उठो! जागो! और पा लो उसे जो सदा से ही पाया हुआ है। अप्रमाद और अंतर्जागृति का शाश्वत संदेश देने वाली पुस्तक।

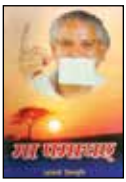

शिव धारा

पृष्ठ संख्या : 112, सहयोग राशि : 50 रु.

सहज, सरल और सटीक शब्दावली में 22 प्रवचनांशो का चिन्तन-प्रधान नवनीत।

अन्तर्यात्रा

पृष्ठ संख्या : 200, सहयोग राशि : 50 रु.

14 सारगर्भित प्रवचनों में संकलित यह पुस्तक बाहर से भीतर लौटने का संदेश देती है। साथ ही सरस और स्वस्थ जीवन जीने के सूत्रों का निरूपण भी करती है।

पढमं नाणं

पृष्ठ सं. : 128, सहयोग राशि : 50 रु.

आचार्य श्री की प्रारंभिक तीन कृतियों - 'पढमं नाणं' 'अनुशीलन' एवं 'समयं गोयम मा पमायए' का यह संयुक्त संस्करण है।

अनुश्रुति

पृष्ठ सं. : 112, सहयोग राशि : 35 रु.

शिवाचार्य के व्याख्यान-वाङमय से चयनित 47 मणि-मुक्ताओं का श्रेष्ठ संकलन।

अमृत की खोज

पृष्ठ सं. : 96, सहयोग राशि : 20 रु.

अंतर्घट के पनघट में संचित अमृत के रहस्य को प्रकट कर उसे पा लेने-पी लेने का सरल संदेश देने वाली पुस्तिका।

सद्गुरु महिमा

पृष्ठ सं. : 112, सहयोग राशि : 50 रु.

सद्गुरु की महिमा के पावन-प्रकाश में देव, गुरु, धर्म, आत्मोपासना और आत्म-प्रेम के आगमीय आधार पर स्वरूप-सृजन की अक्षर-यात्रा।

शिवाचार्य : जीवन दर्शन

लेखक : मंत्री श्री शिरीष मुनि जी महाराज

पृष्ठ सं. : 368, सहयोग राशि : 200 रु.

पंचम काल के सिद्ध साधक शिवाचार्य श्री की लोक-मंगल यात्रा का सांगोपांग सचित्र दर्शन प्रस्तुत करने वाली एक कालजयी रचना।

प्रकाशपुंज महावीर

पृष्ठ सं. : 48, सहयोग राशि : 20 रु.

चौबीसवें तीर्थंकर प्रकाश-पुंज महावीर के जीवन-दर्शन का सरस और सर्वोपयोगी लघु-प्रकाशन।

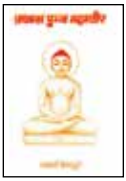

शिवाचार्य वचनामृतम् भाग- 1,2,3

पृष्ठ सं. : 32, सहयोग राशि : 5 रु.

सृजन-साधक शिवाचार्य की कई श्रेष्ठ सर्जनाओं से संकलित सूक्त जो पाठक की हृदय-अवनिका पर अमृत की फुहार बनकर बरसते हैं।

शिवाचार्य ध्यानामृतम्

पृष्ठ सं. : 64, सहयोग राशि : 15 रु.

आत्म ध्यान के स्वरूप विधि एवं सुफल को विवेचित करने वाली पाकेट बुक।

सत्यम् शिवम् शुभम्

पृष्ठ सं. : 312, सहयोग राशि : 75 रु.

युवामनीषी मधुर गायक श्री शुभम् मुनि जी द्वारा अरिहंत सिद्ध भक्ति, आत्मतत्व, गुरुभक्ति, पर्व भजन एवं उद्‌बोधन गीतों का अनोखा सृजन एवं संकलन

शिवाचार्य प्रवचन गीत

पृष्ठ सं. : 96, सहयोग राशि : 10 रु.

भक्ति-रस से आप्लावित ऐसे गीति पदों का संकलन जो स्वर-साधकों और श्रोताओं के हृदय में भक्ति का क्षीर-सागर लहलहा देते हैं।

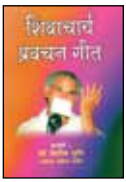

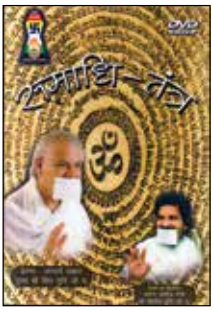

समाधि-तंत्र

सहयोग राशि : 250 रु.

बाल साहित्य

जैन धर्म शिक्षावली

(पहला एवं दूसरा भाग) पृष्ठ संख्या : 48,
सहयोग राशि : 15 रु.

(तीसरा भाग) पृष्ठ संख्या : 40,
सहयोग राशि : 15 रु.

(चौथा भाग) पृष्ठ संख्या : 80,
सहयोग राशि : 25 रु.

(पांचवां भाग) पृष्ठ संख्या : 112,
सहयोग राशि : 30 रु.

(छठा भाग) पृष्ठ संख्या : 112,
सहयोग राशि : 30 रु.

(सातवां भाग) पृष्ठ संख्या : 136,
सहयोग राशि : 35 रु.

(आठवां भाग) पृष्ठ संख्या : 168,
सहयोग राशि : 40 रु.

"जैन धर्म शिक्षावली" भाग 1 से 8 तक जैन- जैनेतर ज्ञान-विज्ञान का इन्साइक्लोपिडिया है। आचार से लेकर विचार तक, धर्म से लेकर दर्शन तक, इहलोक से लेकर परलोक तक तथा जड़ से लेकर चैतन्य के समस्त स्तरों तक, ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसका इन आठ पुस्तिकाओं में दिग्दर्शन न हुआ हो। जैन बालक-बालिकाओं के साथ-साथ जैनेतर बालक-बालिकाओं के लिए भी इन पुस्तिकाओं में मन, मस्तिष्क और आत्मा को पुष्ट करने वाली पर्याप्त सामग्री मौजूद है। वय क्रम को ध्यान में रखकर बाल मनोवेत्ता आचार्य श्री ने इन पुस्तिकाओं को भाषा और भाव की दृष्टि से सरल और सरस बनाने को सफल प्रयत्न किया है।

साधक व्रत आराधना

पृष्ठ सं. : 80, सहयोग राशि : 15 रु.

श्रावक के बारह व्रतों का संक्षिप्त शैली में दिग्दर्शन कराने वाली लघु पुस्तिका।

The Doctrine of Liberation In India religion

अंग्रेजी साहित्य

पृष्ठ सं. : 227, सहयोग राशि : 375 रु.

मुक्ति के सिद्धांतों का जैन धर्म में मुक्ति के स्वरूप के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला देश-विदेश में चर्चित और प्रशंसित शोध प्रबंध।

Return to Self

पृष्ठ सं. : 180, सहयोग राशि : 100 रु.

शिवाचार्य की विश्रुत कृति "आ घर लौट चलें" की आंग्ल भाषा में अनुदित यह रचना जीवन-निर्माण संबंधी स्वर्णिम सूत्रों का अपूर्व संकलन है।

Self Development by Meditation

पृष्ठ सं. : 186, सहयोग राशि : 110 रु.

समाधि द्वारा आत्म-विकास की यात्रा का पथ प्रशस्त करने वाली शिवाचार्य-सृजित "ध्यान-पथ" नामक हिन्दी पाठकों में अतिशय लोकप्रिय पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद।

Spiritual Practices of Lord Mahavira

पृष्ठ सं. : 40, सहयोग राशि : 25 रु.

तीर्थंकर महावीर की साधना का सूत्रात्मक विवरण।

The Doctrine of Karma & Transmigration in Jainism

पृष्ठ सं. : 40, सहयोग राशि : 25 रु.

जैन धर्म में कर्म और पुनर्जन्म के स्वरूप तथा कर्म के भेदोपभेदों से संदर्भित आगमीय चिन्तन को प्रस्तुत करने वाली पुस्तिका।

The Jaina Pathway to Liberation

पृष्ठ सं. : 40, सहयोग राशि : 25 रु.

ध्यान और योग के माध्यम से चौदहवें गुणस्थान-मोक्ष तक की यात्रा का स्वरूप-क्रम स्पष्ट करने वाली पुस्तिका।

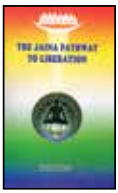

The Fundamental Principles of Jainism

पृष्ठ सं. : 40,
सहयोग राशि : 25 रु.

The Doctrine of the Self in Jainism

पृष्ठ सं. : 40,
सहयोग राशि : 25 रु.

Self-Meditation (Nature and Practice)

पृष्ठ सं. : 40,
सहयोग राशि : 25 रु.

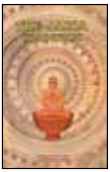

The Jaina Tradition

पृष्ठ सं. : 40,
सहयोग राशि : 25 रु.

कैसेट्स, सी.डी., वी.सी.डी. एवं डी.वी.डी.

सहयोग राशि

संपूर्ण सैट : रु. 1,600/-
ऑडियो कैसेट - रु. 30/-, ऑडियो सी. डी. - रु. 40/-
वीडियो सी. डी. - रु. 50/-, डी. वी. डी. - रु. 60/-

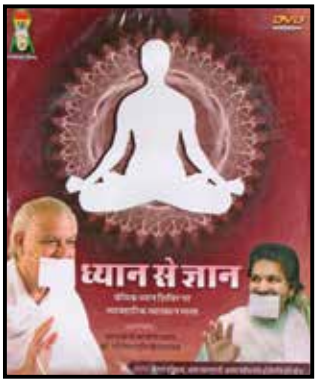

ध्यान से ज्ञान (डी.वी.डी.)
सहयोग राशि : रु. 100/-

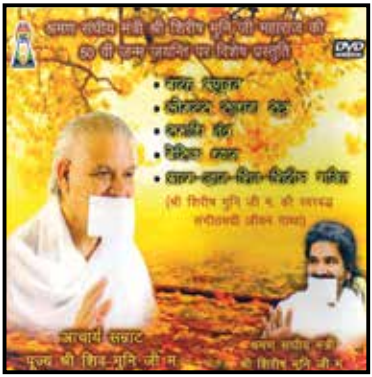

संपूर्ण डी.वी.डी. सैट
सहयोग राशि : रु. 500/-

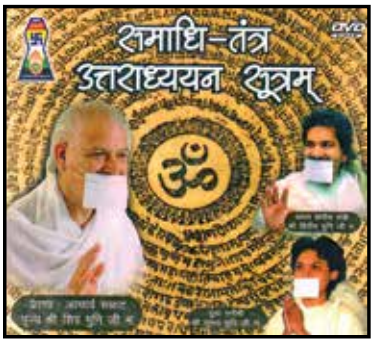

समाधि-तंत्र उत्तराध्ययन सूत्रम् (डी.वी.डी.)
सहयोग राशि : रु. 500/-

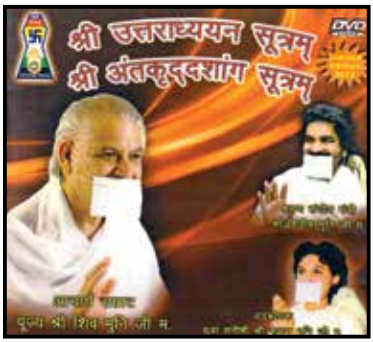

संपूर्ण डी.वी.डी. सैट
सहयोग राशि : रु. 500/-

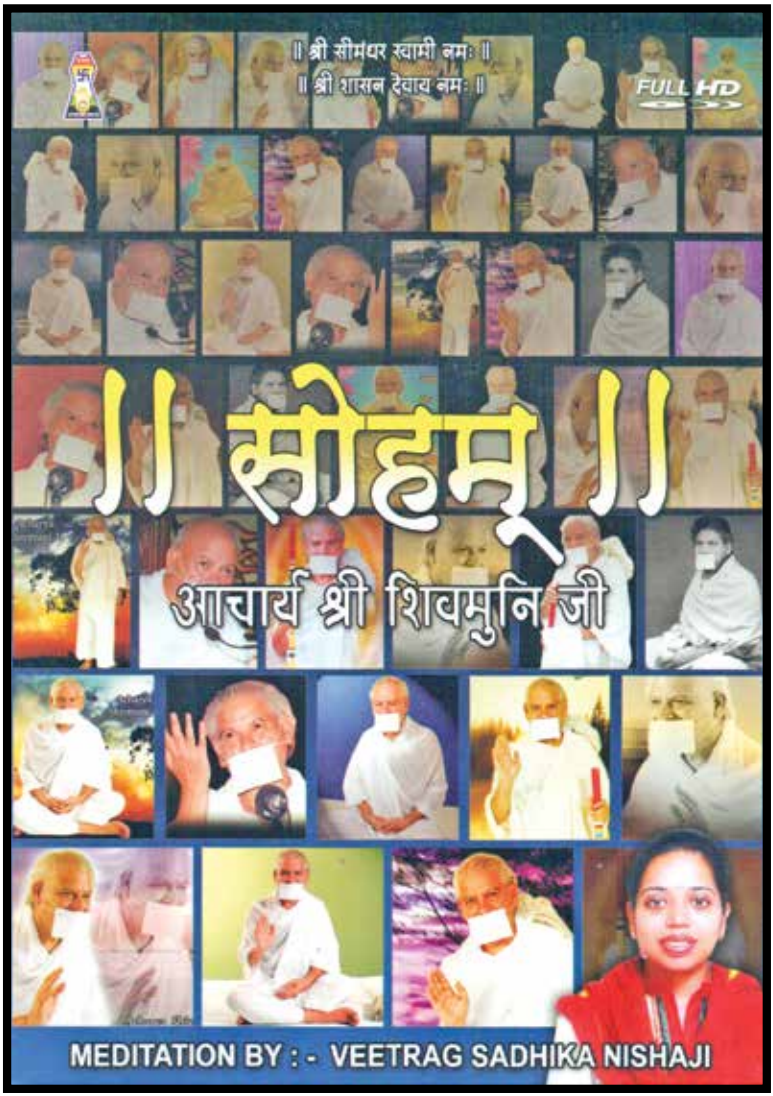

॥ सोहम् ॥ (डी.वी.डी.)

सहयोग राशि : रु. 200/-

शिव ध्यान धारा

जीवन-मूल्यों को समर्पित धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय और सामाजिक विचार धारा की एक मात्र **मासिक पत्रिका** शिव ध्यान धारू है।

आजीवन सदस्यता : रु. 3100/- मात्र

पुस्तकें कैसे मंगवायें?

प्रत्येक ऑर्डर पर अपना नाम व पूरा पता पिन कोड सहित लिखें। अग्रिम राशि प्राप्त होने पर पुस्तकें भेजी जाती हैं। डाक शुल्क अलग से भेजें। शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति दिल्ली के नाम देय डी.डी. या मनीऑर्डर के द्वारा ही सहयोग राशि प्राप्त की जाती है। मनीआर्डर या डी.डी. प्राप्त होते ही पुस्तकें रजि. डाक द्वारा भेजी जाएंगी। आपके ऑर्डर की पुस्तकें या पत्र का जवाब 15 दिन तक न मिले तो समझें कि आपका पत्र हमें नहीं मिला है। अतः तुरन्त दूसरा पत्र लिखें। यदि आप पुस्तक विक्रेता हैं और हमारे प्रकाशनों में रुचि रखे हैं तो एजेन्सी के लिए संपर्क करें। लाइब्रेरी सप्लाई की भी विशेष व्यवस्था है।

सम्पूर्ण साहित्य एक साथ लेने पर सहयोग राशि : रु. 5100 मात्र।

आगम साहित्य एक साथ लेने पर सहयोग राशि : रु. 4100 मात्र।

1. शिवाचार्य ध्यान सेवा समिति, आदीश्वर धाम, कुप्पकलां - 148019
   जिला संगरुर (पंजाब) फोन नं. 01675-273981
   मो. नं. 094160 34463

2. श्री अनिल जैन, 1924, गली नं. 5, कुलदीप नगर,
   लुधियाना (पंजाब)
   मो. नं. 094170 11298

3. शिवाचार्य समवशरण, एफ-3/20,
   ओंकार धाम रोड, रामा विहार, नजदीक रोहिणी सैक्टर-22,
   दिल्ली-110081
   मो. 093501 11542

आत्म–ध्यान क्या है?

आत्म–ध्यान से कैसे जुड़े?

क्या आप अपना जीवन
आनंद, शांति, सुख, समृद्धि व
सम्पन्नता से जीना चाहते हैं?
क्या आप जीवन के रहस्यों का
ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं?
कान हैं आप?
क्या है जीवन का सत्य?
क्या है असत्य?
किसका ज्ञान प्राप्त करने से सभी
समस्याओं का समाधान हो जाता है?
बिना किसी शब्द-ज्ञान के आप एक तत्व
को जान लो तो आपको सर्वज्ञान हो सकता है।
आपके जीवन का हर पल प्रसन्नता
एकं मुक्ति का हो सकता है।
वह तत्व है अरिहंतों की साधना :
आत्म-ध्यान।

बेसिक शिविर (एक दिवसीय)

विशेष : एक दिवसीय शिविर सुबह 9:30 बजे से प्रारंभ होकर शाम 5:00 बजे संपन्न होता है।

प्रार्थना ध्यान	:	विनय एवं पात्र शुद्धि के लिए
सोऽहं ध्यान	:	श्वास व सोऽहं से चित्त की शुद्धि एवं स्वरूप-बोध की साधना
कोऽहं ध्यान	:	सत्य की खोज एवं सत्य का बोध, सम्यक्त्व के बीज का वपन - मैं शुद्धात्मा में स्थापित-अहंकार का विलय
मैं एवं मेरा	:	मैं एवं मेरे में अन्तर करते हुए मिथ्यात्व का त्याग एवं चारित्र रूप में आसक्ति का त्याग अनासक्त योगी की भूमिका में मेरे पन का त्याग कर वीतरागता में जीवन व्यतीत करना।
आलोचना	:	इस जीवन एवं पूर्व जन्मों के अनंत कर्मों को क्षय करने की उत्तम विधि-प्रायश्चित्त द्वारा आत्मशुद्धि से समस्त तनावों से मुक्त होकर जीवन में हलकापन एवं आगे के लिए कर्म बंधन रुक जाते है। शुद्ध सामायिक प्रतिक्रमण की विधि का प्रशिक्षण है **आत्म-ध्यान बेसिक शिविर।**

गंभीर शिविर (चार दिवसीय आवास सहित)

विशेष : गंभीर शिविर प्रथम दिवस प्राप्त : 10:00 बजे प्रारंभ होता है तथा अंतिम दिवस दोपहर बाद 4:00 बजे सम्पन्न होता है।

जिन साधकों को आत्मबोध के पश्चात् आत्मरमण की रूचि जाग्रत हो गई है वे गंभीर शिविर में आमंत्रित हैं। इसमें जन्म-जन्मान्तर के शुभाशुभ कर्मों का क्षय करने की विधि प्राप्त होती है। यह सम्यक्त्व को क्षायिक सम्यक्त्व में परिवर्तित करने का पुरुषार्थ है। धर्मध्यान से शुक्लध्यान में प्रवेश करने की विधि प्राप्त होती है। संसार में रहते हुए भी 24 घंटे सामायिक में रहने की कला का विकास होता है। "बिन घन परत फुहार" साधक अकारण ही अहर्निश आनंद में तल्लीन रहता है।

सप्त दिवसीय शिविर (आवास सहित)

जीवन के आमूल चूल रूपान्तरण की साधना इस शिविर में प्राप्त होती है। भेद-विज्ञान परिपुष्ट होता है। अष्टकर्मों को क्षय कर अष्ट गुणों में रमण की विधि विकसित होती है। माता मरुदेवी व भरत चक्रवर्ती ने किस विधि से केवलज्ञान प्राप्त किया, उस विधि का गुप्तज्ञान प्रदान किया जाता है।

सप्त दिवसीय शिविर एक अनुपम अनुभव देता है। साधक के सभी मानसिक-आत्मिक क्लेश मूलतः नष्ट हो जाते हैं। वह संसार और परिवार के मध्य में रहकर भी जलकमलवत् संसार से निरपेक्ष रहता है। सतत सहज आनंद उसका स्वभाव बन जाता है।

विशेष : जिस साधक ने कम से कम दो गंभीर शिविर किये हैं वही साधक सप्त दिवसीय शिविर में भाग ले सकता है।

शिविर के नियम : –

1. बेसिक कोर्स किये हुए साधक ही गम्भीर शिविर में प्रवेश कर पायेंगे।
2. बेसिक शिविर में प्रार्थना, ध्यान, आसन, प्राणायाम, आलोचना एवं वीतराग सामायिक का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण दिया जायेगा। प्रत्येक गम्भीर शिविर के एक दिन पहले एक दिवसीय बेसिक शिविर होगा।
3. साधकों को गंभीर साधना शिविर में पूर्ण मौन रहना होगा, मोबाइल आदि का प्रयोग निषेध है।
4. गंभीर साधना शिविर में जो मार्गदर्शन मिलेगा वही करना होगा।
5. गंभीर साधना शिविर काल में साधकों को शिविर स्थल पर ही रहना होगा।
6. गंभीर साधना शिविर काल में बाहर के किसी व्यक्ति से सम्पर्क नहीं कर पाएंगे।
7. गंभीर साधना के लिए सफेद वस्त्र एवं ढीले वस्त्र लाएं। सामायिक के उपकरण साथ ला सकते हैं।
8. साधक आवश्यक सामग्री कपड़े, चादर, योगासन हेतु दरी आदि साथ लायें।
9. सभी शिविरों से पूर्व रजिस्ट्रेशन आवश्यक है।

✡ सम्पर्क सूत्र ✡

श्री जितेन्द्र जैन, दिल्ली	09810062967	श्री रोहित जैन, सूरत	09825100020
श्री दिनेश कोठारी, मुम्बई	09867502991	श्री महेन्द्र जैन, दिल्ली	09873302225
श्री अशोक जैन, लुधियाना	09417264571	साधिका रेणु जैन, लुधियाना	09316858566
श्री प्रमोद जैन, मालेरकोटला	09888642418	साधिका उषा शर्मा, अंबाला	0171-2510022
श्री कुलदीप जैन, जयपुर	09314501666	श्री सुशील जैन, करनाल	09416034463
श्री कंवरलाल सूर्या, भीलवाड़ा	09414113056	श्री अशोक पीतलिया, भोपाल	07552534480
श्री शांतिलाल जैन, इंदौर	09425318003	श्री दिनेश बड़ाला, चितौड़गढ़	09414734855
श्री गोकुल पारख, पूणे	09422792037	श्री नानालाल कोठारी, उदयपुर	08104451008
श्रीमती बिमला बाफना, औरंगाबाद	09823229002	श्रीमति अलका जैन, दिल्ली	09810024019
श्री रजत जैन, जम्मू	09419182636	सुभाष शर्मा	09350111542

Visit us our website : www.jainacharya.org, www.shivacharyaji.org
Email : shivacharyaji@yahoo.co.in, shivacharyaji108@yahoo.com
Facebook : http://www.facebook.com/shivmuni
Twitter : http://www.twitter.com/jainacharya Android App : Jainacharya
Blogger : http://acharyashivmuni. blogspot.in Our contact No. 09350111542
YouTube : http://www.youtube.com/jainacharyaji

आचार्य सम्राट श्री शिवमुनि जी म. के आशीर्वाद से
अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. श्रमण संघीय श्रावक समिति
के तत्वावधान में संस्थापित

श्रमण संघ विकास फण्ड

इस फण्ड के अन्तर्गत प्राप्त धनराशि श्रमणसंघ में शिक्षा, सेवा, स्वास्थ्य एवं साधना हेतु व्यय की जायेगी। संघ सेवा एवं संघ विकास हेतु सहयोग के लिए आप सभी आमंत्रित हैं। श्रमण संघ विकास फण्ड के सदस्य बनकर पुण्यानुबंधी पुण्य के भागी बनिये।

सदस्यता शुल्क : प्रतिवर्ष रु. 1,000/-
(दस वर्षों के लिए एक साथ रु. 10,000/- भी जमा कराये जा सकते हैं।)

"स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया" राणा प्रताप बाग, दिल्ली : A/c 31175118989

मुख्य कार्यालय :
शिवाचार्य समवशरण
एफ-3/20, ओंकार धाम रोड, रामा विहार, नजदीक रोहिणी सेक्टर-22, दिल्ली-81

सम्पर्क सूत्र :-

अध्यक्ष	कार्यकारी अध्यक्ष	महामंत्री	कोषाध्यक्ष
सुमतिलाल कर्णावट	रविन्द्रनाथ जैन	सतीश जैन	अनिल जैन
9320155555	9810020054	9810226672	9811166108

सुभाष शर्मा : 9350111542

43, वीर नगर, जैन कॉलोनी, नियर राणा प्रताप बाग, दिल्ली-7

आज के भाग-दौड़ भरे तनाव ग्रस्त माहौल में मानव ने अपने स्वास्थ्य और सुख को खो दिया है। उसकी प्रत्येक भौतिक सफलता असफल परिणाम पर दम तोड़ रही है। इस विडंबना का कुल कारण इतना है कि मानव जीवन जीने का सलीका भूल गया है। थोड़े-से होश और थोड़ी-सी समझ से जीवन जीने का सम्यक् सलीका सीख लिया जाए तो स्वास्थ्य, सुख और सफलता का स्वप्न साकार किया जा सकता है।

जीवन के उसी सम्यक् सलीके को श्रद्धेय शिवाचार्य श्री ने प्रस्तुत पुस्तक में वैज्ञानिक और आध्यात्मिक सरल सूत्रों में प्रस्तुत किया है।

आयुष्य के तिहत्तरवें सोपान पर भी बालकों की सरलता और युवकों की तरलता को जीने वाले श्रद्धेय शिवाचार्य श्री द्वारा रचित यह कृति पाठकों को भी सरलता और तरलता के साथ-साथ सफलता और स्वास्थ्य का भी रस-रहस्य प्रदान करेगी, इसमें किंचित् संदेह नहीं है।